अध्याय : 2

विष्णु प्रभाकरजी के नाटकों में सामाजिक जीवन की समस्याएँ और नारी-समस्या

अध्याय : 2

विष्णु प्रभाकरजी के नाटकों में सामाजिक जीवन की समस्याएँ और नारी-समस्या

1· सामाजिक जीवन और मानव

मानव के जीवन चक्र का प्रतिबिंब ही साहित्य है। मानव की क्रिया-प्रतिक्रियाओं को साहित्य में उतारा जाता है। मानव समाजप्रिय प्राणी है। वह समाज में रहता है। मानव के बिना समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती। मानव का जन्म, विकास और विनाश प्रकृति में होता है। समाज में रहकर मनुष्य कुछ कर सकता है। अकेला मानव कुछ कर नहीं सकता। अर्थात मानव को अपने विकास के लिए समाज की जरूरत है। समाज के अतिरिक्त मानव-मानव नहीं रहेगा। मानव का अधिकतर सम्बन्ध समाज से ही रहता है। मानव संवेदनशील प्राणी होने के कारण उसके मन में अनेक विचार आते हैं। उसके जीवन में अनेक घटनाएँ घटित होती हैं। सुख,दुःख, हर्ष, आनन्द इन सभी में मानव की विशिष्टता दिखायी देती है। मानव जब जीवन में किसी चीज का अभाव देखता है, तो उस अभाव की पूर्ति के लिए संघर्ष करता है, उसका सामना करता है। इस संघर्ष के पीछे मानव की ज्ञान-लालसा और इच्छा शक्ति होती है। जब तक मानव की जिज्ञासू वृत्ती की तृप्ति नहीं हो पाती, तब तक मानव को अपने जीवन में अभाव महसूस होता है।

मानव समार्जाप्रिय प्राणी है, इसी कारण वह समाज में रहता है। मानव समाज में अपनी आयू के साथ जैसे-जैसे बढता जाता है, वैसे मानव को अपने जीवन की उपयुक्तता एवं अनुकूलता समझने लगती है। बड़ा हो जाने पर एक विशेष ढंग का जीवन व्यतीत करने की व्यावहारिकता मानव में आ जाती है और यह मानव अपना जीवन,जीवन के मूल्य और जीवन के आदर्श उसी समाज में निश्चित करने लगता है। समाज में घटित परिस्थितियों के अनुभव और प्रभाव मानव के व्यक्तित्व को किसी प्रकार के निश्चित ढाँचे में ढाल देते हैं। मानव की यह अनुभूत

संवेदना समाज के व्यापक परिवेश से जुड़ जाती है। व्यक्ति को समाज में कई प्रकार के अनुभव मिलते हैं। इन अनुभवों के परिणामस्वरूप उस व्यक्ति द्वारा समाज के प्रति बनायी गयी धारणाओं में भी परिवर्तन आ जाता है। समाज और जीवन के प्रति उस व्यक्ति की कुछ अपनी धारणाएँ होती हैं, जो उसके समाज-दर्शन और उसकी जीवन दृष्टि का परिणाम होती है। व्यक्ति या वर्ग या समाज में जो कुछ उसकी दृष्टि में गलत घटित होता है, उसके मन में संघर्ष पैदा होता है। "संवेदना हमारे मन की वह कुटस्थ अवस्था है, जिसमें हमें विश्व की वस्तुविशेष का बोध न होकर उसके गुणों का बोध होता है।"[1] साधारण-सी घटना भी संवेदनशील व्यक्ति के मन में तूफ़ान उठाती है। संवेदना समाज की वह आधारशीला है, जिस पर सभ्यता और संस्कृति का भवन खड़ा होता है। प्रत्येक व्यक्ति की संवेदना समाज, राजनीति और धार्मिक भावों के प्रति अनुभव के बल पर ही बनती और पनपती है।

समाज के अनेक कटू और सत्य अनुभवों से साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से समाज की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। जो हमें नाटककार विष्णु प्रभाकरजी के नाटकों में दिखाईदेता है। समाज वह है जहाँ एक से अनेक व्यक्ति आ जाते हैं। वहाँ आपस में संघर्ष हो जाता है। व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष और समाज-समाज का संघर्ष प्रत्येक युग में देखने मिलता है। इसी संघर्ष के कारण हम आगे बढ़ते हैं, चाहे वह विकास की ओर हो या विनाश की ओर। हर एक व्यक्ति सृष्टि को जिस दृष्टिकोण से देखता है, उसी प्रकार निष्कर्ष निकालता है और अपनी ही जीवन-दृष्टि के अनुसार कल्पना कर लेता है। मनुष्य का जीवन नग्न, रिक्तता, मलीनता और जड़ता से क्षत-विक्षत हो गया है। आज के व्यक्ति को अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक संघर्ष करना पड़ रहा है। पहले व्यक्ति का संघर्ष केवल मानव और प्रकृति का संघर्ष था। फिर मानव और मानव का संघर्ष शुरू हुआ। लेकिन आज मानव-प्रकृति और मानव-मानव के संघर्ष के कारण व्यक्ति को स्वयं अपने आपसे भी संघर्ष करना पडता है। समाज में ही रहनेवाले अनेक व्यक्ति समाज में प्रचलित मूल्यों और व्यवस्था से दूर रहना चाहते हैं। आज का व्यक्ति अपने जीवन में परिवर्तन चाहता है। समाज में बदलती हुई मान्यताओं के प्रति ही उत्सुक रहता है। आज के भारत का व्यक्ति यदि एक ओर पुराने संस्कारों और मान्यताओं से बंधा रहना चाहता है, तो दूसरी ओर वह उन परम्परागत संस्कारों

को छोडकर नये संस्कार ग्रहण करने का संघर्ष भी कर रहा है। "आज के युग में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के प्रति भी जागरूक हो चुका है। अपनी सारी आत्म-चेतना में वह अपने व्यक्तित्व को समष्टि की व्यापक चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम स्वीकार करता है।"[2]

प्रत्येक मानव पर सामाजिक वातावरण का प्रभाव पडता है। समाज में व्यक्ति नहीं रहता, व्यक्ति में ही समाज जीवित रहता है। व्यक्ति ही समाज को सार्थकता देता है। आज समाज में अनेक परिवर्तन हुए हैं। व्यक्ति प्रत्येक स्तर पर समाज से जुडा हुआ है। वह समाज को रहन-सहन, आचार-विचार, नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि परिस्थितियों से जुडा हुआ है। हर एक व्यक्ति समाज के सम्पर्क में आकर समाज से बहुत कुछ सीखता है। आज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में निरन्तर उतार-चढाव की स्थिति देखने को मिलती है। सभ्यता और संस्कृति में भी परिवर्तन होते रहे हैं। आर्थिक क्षेत्र में विज्ञान के प्रभाव के कारण क्रान्ति हो रही है। यंत्र युग के कारण मानव की स्थिति गौण हो रही है। जीवन में यांत्रिकता का प्रवेश हो गया है। सामाजिक जीवन में मूल्यों का -हास होता जा रहा है। अंधविश्वासों का अंत होकर वैज्ञानिक विश्वास पनप रहा है। सामाजिक सम्बन्धों में घर, परिवार, माता-पिता आदि का महत्व कम हो रहा है। नर-नारी में समानता आ रही है। पहले जैसा धर्म का आतंक नहीं रह गया है। जीवन के अनेक क्षेत्रों में क्रान्ति हो रही है। आज जिस किसी समाज में किसी विशेष विचारधारा, मान्यता और परम्परा का प्रभाव व्यक्ति पर होगा, उसी के अनुसार उस व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध होगा।

2· सामाजिक जीवन की समस्याएँ

व्यक्ति के लिए सामाजिक जीवन मूल्य वह आदर्श जीवन पद्धति है, जिसका पालन करना किसी भी समाज के लिए आवश्यक समझा जाता है। इसी जीवन-मूल्यों को लेकर नाटककार विष्णु प्रभाकरजी ने अपने नाटकों में सामाजिक जीवन की समस्याओं को चित्रित किया है। जीवन-मूल्यों का पालन करने वाला व्यक्ति समाज में आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में मानवीय समस्याओं से सामाजिक स्थिति भी प्रभावित हुई। प्राचीन भारतीय समाज का नियंत्रण ग्राम

पंचायत, वर्ण-व्यवस्था और संयुक्त परिवारों द्वारा ही होता था। लेकिन आधुनिक और प्राचीन समाज के मध्ययुग में ज्ञान एवं शिक्षा के अभाव में विभिन्न रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का जन्म होने लगा और इनसे समाज में जिन समस्याओं का निर्माण हुआ उससे समाज पतन की ओर जाने लगा। प्रत्येक जाति और समाज में भिन्न प्रकार के जीवन-मूल्य की मान्यताएँ अपने-अपने ढंग की होती है।

बोगेरस अपनी पुस्तक "दि डिवेल्पमेंट ऑफ सोशियल थॉट" में लिखता है कि - "पर्यावरण के वैविध्य में मनुष्य मूल्यों का निर्माण और विकास करता है। ये मूल्य समान परिस्थितियों या स्वीकृत संस्कारों के प्रभावान्तर्गत मानव के मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार की साकारता ग्रहण कर लेते हैं। अतः मूल्यों का कार्य सामाजिक संघर्षों को बढ़ाना एवं उनका विकास एवं उनसे सुधार की प्रक्रिया को सक्रिय बनाना है।"[3]

व्यक्ति की स्वतंत्रता की जन्मजात प्रवृत्ति परम्परागत विचारों, आचरणों एवं व्यवहारों में बंधी जीवन पद्धति को तोड़ने की प्रेरणा देती रहती है। आज के युग में धर्म शक्ति का -ह्रास पारिवारिक सम्बन्धों का विघटन, बदलत हुई मान्यताएँ और रूढियाँ इस बात को स्पष्ट करती है कि बदलती हुई परिस्थिति में वर्तमान सामाजिक जीवन मूल्यों के परिवर्तन का समय आ चुका है। आधुनिक काल में नवीन शिक्षा से प्रभावित युवक-युवतियों ने समाज और परिवार व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना को जन्म दिया, जिसके कारण समाज में अनेक नवीन समस्याएँ उद्‌भूत हुई। और वर्तमान समाज को नया रूप प्राप्त हुआ, जिसका समर्थन नवीन भारतीय समाज सुधारकों ने किया।

"उन्नीसवीं शती हिन्दी साहित्य में नये विचारों और नये चिन्तन के उन्मेष का काल है। क्योंकि परिवर्तित परिस्थितियों के संदर्भ में इस काल-बिन्दु से ही साहित्य में आधुनिक चिन्तन के संदर्भ में राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना का विकास हुआ है। यही समय सांस्कृतिक जागरण का आरम्भ है। चिन्तकों का ध्यान इसी कालखण्ड में धार्मिक-सामाजिक कुरीतियों को पहचानने एवं पहचान करवाने की ओर आकृष्ठ हुआ था। राजा राममोहन आदि धार्मिक सामाजिक सुधारकों के चिन्तन के क्षितिज से नयी विचारणाओं के सूर्य का उदय हुआ और जाति-प्रथा, बाल-विवाह,

विधवा-विवाह, मूर्ति-पूजा, अछुतोद्धार तथा इसी प्रकार की अन्य जीवन व्यापी समस्याओं के प्रति समाज के पारम्परिक संस्कारों में परिवर्तन का प्रयास किया गया।"[4]

पाश्चात्य शिक्षा और वैज्ञानिकता ने भारतीयों के सामाजिक जीवन पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया और भारतीय समाज पाश्चात्य सामाजिक व्यवस्था और रूढ़ियों से प्रभावित हुआ। परिणामस्वरूप भारतीय सामाजिक जीवन में नयी-नयी समस्याएँ उत्पन्न होने लगी।

सामाजिक जीवन की समस्याएँ

1· परिवार के विघटन की समस्या
2· नारी और किसान के शोषण की समस्या
3· परिवार की आर्थिक समस्या
4· सुधारकों के पाखण्ड की समस्या
5· शिक्षा समस्या
6· विवाह की समस्या
7· अंधविश्वास की समस्या
8· भ्रष्टाचार की समस्या।

1· परिवार के विघटन की समस्या

श्री विष्णु प्रभाकरजी ने इस समस्या की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है, जो आज के आधुनिक युगमेंदिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है।

भारतीय समाज के विभिन्न संस्थानों में संयुक्त परिवार एक सर्वश्रेष्ठ संस्थान माना गया है। इसमें परिवार के सदस्यों का परस्पर व्यवहार, आचरण, स्नेह, प्रेम आदि बातें महत्वपूर्ण होती हैं। संयुक्त परिवार के लिए एक मकान, एक रसोई, सामूहिक पूजापाठ, एक-दूसरे के प्रति विश्वास और सम्मलित सम्पर्क होना जरूरी है। परिवार के एक प्रमुख व्यक्ति के नेतृत्व में परिवार के सभी व्यक्ति मिलकर कार्य करते हैं। अपने परिवार की समृद्धि और शान्ति बनाये रखते हैं। भारतीय समाज संयुक्त परिवार द्वारा ही नियंत्रित होता रहा है। लेकिन आज का भारतीय परिवार विघटन की ओर किस तरह बढ़ रहा है, यह हमें विष्णु प्रभाकरजी के नाटकों के

अध्ययन से दिखाई देता है। "परिवारों में किसी भी प्रकार की अव्यवस्था ही पारिवारिक विघटन कहलाती है।"[5] नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में एक संघर्ष और विरोध का कारण नयी शिक्षा प्रणाली, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव और वैज्ञानिकता ही है। इसका चित्रण विष्णु प्रभाकरजी के "टूटते परिवेश" और "युगे युगे क्रान्ति" नाटकों में मिलता है। औद्योगिक अर्थ व्यवस्था के कारण ग्रामीण व्यक्ति अपने परिवार को छोड़कर नगरों में अकेला ही जीवन व्यतीत करने लगा। पाश्चात्य संस्कृति के व्यक्तियों से प्रभावित होकर संयुक्त परिवार के प्रति उदासीन होने लगा और अपनी पत्नी और सन्तान को लेकर वैयक्तिक परिवार का निर्माण किया। इसी प्रकार संयुक्त परिवार विघटित होकर अनेक परिवारों में विभाजित हो गया।

"टूटते परिवेश" नाटक एक ऐसे मध्यम वित्त परिवार की कहानी कहता है जिसमें नया-पुराना, दोनों सह-अस्तित्व की विवशता झेलते दिखाई देते हैं। परिवार में पुरानी और नई दो पीढ़ियों को एक ही छत के नीचे जीवन यापन करने की विवशता दोनों के बीच संघर्ष की स्थिति को पैदा करती है। पुरानी पीढ़ी को अपनी संस्कार और मर्यादाएँ होती हैं। नई पीढ़ी अपने लिए नई मर्यादाएँ,नये मूल्य गढ़ना और केवल अनुभवों से जीना पसन्द करती है। इस नाटक का प्रारम्भ इसी परिवेश अर्थात इसी वातावरण में प्रस्तुत होता है। गृहस्वामी विश्वजीत अपने ही घर के लोगों,बेटों और बेटियों के आमने-सामने खड़ा दिखाई देता है। इस नाटक में सबकी अपनी-अपनी दुनिया है और सब अपनी-अपनी दुनिया में मस्त हैं। इसीलिए सबको एक-दूसरे से शिकायत है। इन शिकायतों और प्रतिक्रियाओं के बीच परिवार के विघटन का एक चित्र उभरता है।

व्यक्ति अपने व्यक्तिगत अधिकारों को उचित संरक्षण मिलने के लिए विघटित परिवार में विश्वास करता है। आधुनिक विकसनशील समाज के मूल्यों, आदर्शों, प्रथाओं, विश्वासों, आचार एवं व्यवहारों में परिवर्तन होने के कारण संयुक्त परिवार का विघटन शिक्षित नारी, पति-पत्नी का मिलन, दाम्पत्य प्रेम का विकास और समस्त परिवार का भार आदि कारणों से हो रहा है। "पारिवारिक विघटन, सदस्यों को एक में बांधनेवाली स्थितियों या क्रियाओं का कमजोर हो जाना या उसमें असामंजस्य की स्थिति है। इस प्रकार पारिवारिक विघटन का सिमटाव केवल पति-पत्नी के तनाव तक ही नहीं, बल्कि पिता-पुत्र या अन्य सदस्यों के बीच होने वाला तनाव भी

इसी घेरे में आता है।"[6]

परिवार के व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों में वैयक्तिक स्वतन्त्रता और बुद्धिवाद की प्रबलता है। आज समाज में प्रत्येक परिवार में पति-भक्ति, मातृ-पितृ भक्ति, आज्ञाकारिता और गृहस्थ जीवन की मर्यादाएँ आदि के स्थान पर वैयक्तिक विचार का प्रभाव बढ़ रहा है। आज की नई पीढ़ी के विचारों का पुरानी पीढ़ी के विचारों से मतभेद है। पुरानी मान्यताओं और विश्वासों में जीनेवाले पुराने लोग और नयी युवा पीढ़ी में तनाव की स्थिति है। आज लघु परिवार को ही आदर्श परिवार समझकर परिवार नियंत्रण के साधनों के प्रयोगों को प्रोत्साहित किये जाने लगा। और वर्तमान परिवार पति-पत्नी-बच्चों तक ही सीमित हो गया। परम्परा से छुटकारा पाकर और परम्परागत सभी मानव-सम्बन्धों के मोहपाश से मुक्त होकर आज का व्यक्ति अधिक से अधिक आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। परिवार के सदस्यों के निकटतम सम्बन्धों में ज्यों अपनापन था वह आज मिटता जा रहा है।

विष्णु प्रभाकरजी का "टूटते परिवेश" नाटक पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन का ही नाटक है। नाटककार के अनुसार पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के विचारों में बहुत बड़ा अंतर पड़ गया है। पुरानी पीढ़ी के परिवार के सदस्यों में स्नेह, सहयोग छोटे-बड़ों के प्रति उचित सम्मान और प्यार रहता था। कुल की परम्परा और पारिवारिक मर्यादाओं का पालन किया जाता था। लेकिन आज परिवार के सभी सदस्य केवल अपनी रूचि और अपना हित ही जानते हैं। अपने स्वार्थ के कार्य को जरूरी समझते हैं। "टूटते परिवेश" में विवेक अपने पिता विश्वजीत से कहता है, "पापा आपका जमाना कभी का बीत गया। अब बीते जीवन की धड़कने सुनने अच्छा है कि वर्तमान की साँसों की रक्षा की जाये।"[7] विवेक की बात में बात मिलाती हुई दीप्ति भी ऐसा ही विचार व्यक्त करती हुई कहती है - "लेकिन कुछ लोग हैं ज्यों बीते इतिहास में ही रहना पसन्द करते हैं।"[8] प्रस्तुत नाटक में विश्वजत पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। वह परिवार के स्वतंत्र सदस्यों के बारे में अपनी राय देता है, "अच्छा तो है स्वतंत्र होना। लोग मुझे सुखी भी कहते हैं। सुखी होना भी अच्छा है। पर मैं ठहरा दुनियादार आदमी। स्वतंत्र और सुखी होने के लिए कभी माथा-पच्ची नहीं की। स्वार्थ के अलावा और कुछ को प्यार

13131
A

करने का वक्त नहीं मिला। ऐसा ही मजबुरियों से चिपका रहा। स्वभाव की मजबुरी, बच्चों को प्यार करने की मजबुरी, उनका बाप होने की मजबुरी, उनको खो देने पर यह आशा करने की मजबुरी की एक दिन वे लौट आयेंगे।"[9]

नाटककार विष्णु प्रभाकरजी का कहना है कि पुरानी पीढ़ी के लोग अपने परिवार की चिन्ता करते थे। अपने परिवार को बनाये रखने के लिए कार्यरत रहते थे। लेकिन आज ये पुराने पीढ़ी के लोग नयी पीढ़ी के सम्मुख बाधा बन गये हैं। इसी कारण पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव आ जाता है। आधुनिक परिवेश एक अन्धा कूप-सा है। संयुक्त परिवार के प्रति घृणा कर आधुनिक व्यक्ति परिवार के विघटन की ओर बढ़ने लगा। यह पाश्चात्य भौतिकवादी विचारधारा का ही परिणाम है। आज कोई भी व्यक्ति किसी का भी नियंत्रण स्वीकार नहीं करता। इसीकारण व्यक्ति एक-दूसरे से कटता जा रहा है। "सामाजिक विघटन उस समय उत्पन्न होता है जब सन्तुलन स्थापित करने वाली शक्तियों में परिवर्तन होता है। तब सामाजिक संरचना इस प्रकार हटने लगती है कि पूर्व स्थापित आदर्श नवीन परिस्थितियों पर लागू नहीं होते और सामाजिक नियन्त्रण के स्वीकृत रूपों का प्रभावपूर्वक कार्यान्वयन असम्भव हो जाता है।"[10] टूटा परिवार, अनैतिक वातावरण, पारिवारिक कलह, मानसिक अशान्ति, वर्ग-संघर्ष, जातीय भेद, राजनैतिक द्वन्द्व, धार्मिक द्वेष, प्रान्तीयता तथा भाषा भेद आदि ने सामाजिक व्यवस्था को क्षीण बना दिया है। प्रगतिशील विचारधारा ने संयुक्त परिवार को विघटित कर व्यक्ति परिवार को प्रोत्साहित किया है। "टूटते परिवेश" नाटक में एक परिवार के बिखराव के माध्यम से टूटता हुआ आधुनिक परिवेश प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में परिवार के विघटन की समस्या के समाधान की ओर संकेत करने का विष्णु प्रभाकरजी का ढंग प्राप्त होता है। अतः यह नाटक परिवार के विघटन की समस्याको समेटा हुआ है ज्यों वर्तमान युग की मुख्य समस्या है।

2· नारी और किसान के शोषण की समस्या

क· नारी के शोषण की समस्या : मानव समाज में पुरूष की अपेक्षा नारी की स्थिति हीन और दयनीय रही है। नर एवं नारी दोनों ही समाज के आवश्यक अंग हैं। लेकिन पुरूष समाज ने आज तक नारी को सेज की शोभा और अपनी इच्छा की कठपुतली ही समझा है। आज तक भारतीय नारी पुरूष से अपमानित

और लांछित होती रही है। पुरूष की दृष्टि में न तो नारी के गौरव का कोई अर्थ है और न उसके समर्पण का। ऐश्वर्य, पद, मर्यादा, अधिकार के आडम्बर की रचना करने वाले पुरूषों ने नारी के साथ सदा ही छल और विश्वासघात किया है। समाज की झूठी मर्यादाओं के कारण नारी की अभिलाषाओं की सदा से ही हत्या होती रही है। उसके अरमानों का गला-घोंट दिया है। पुरूष ने आरम्भ से ही नारी को अनेक बंधनों में बाँधकर उसका शोषण किया है।

श्री विष्णु प्रभाकरजी के "अब और नहीं" नाटक में नारी के शोषण का चित्रण किया है। हर समय पुरूष द्वारा ही नारी का शोषण होता गया है ऐसे समय नारी की बीमारी का सम्बन्ध शरीर से न होकर मन से होता है। इस नाटक की नायिका शान्ता को सितार बजाने, चित्र उतारने का शौक था। लेकिन शान्ता के इस शौक पर उसका पति वीरेन्द्र प्रताप के बन्धन आते हैं। वीरेन्द्र प्रताप शान्ता को सिर्फ अपने आप में खोयी हुई देखना चाहते थे। जैसे वीरेन्द्र प्रताप ने अपनी पत्नी की स्वतंत्रता को छिन लिया था। हर परिस्थिति में नारी को पुरूष दबाये रखने का (आदि) होता है। वह अपना वर्चस्व नारी पर जमाये रखना चाहता है। नारी में अपनी स्वतंत्र सत्ता की पहचान न हो पाने का दर्द बहुत तीव्र होता है, इतना तीव्र कि उसकी चेतना ही घायल हो जाती है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने यह बताने की कोशिश की है कि पुराने जमाने से अभी तक समाज में नारी का शोषण किस प्रकार होता है।

"अधिकार दृप्त पुरूष नारी को उपभोग की वस्तु मानकर उसके व्यक्तित्व और आत्मा का तिरस्कार करता रहा है। यही सत्य आज की स्त्री की स्वातंत्र्य भावना अथवा स्त्री-पुरूष प्रतियोगिता से बल प्राप्त कर नारी में संघर्ष धारण कर आया है।"[11] समाज में सदा से ही पुरूष के मन में नारी के प्रति तुच्छता का विचार रहा है। समाज में स्त्रियों को कभी भी ऊँचा स्थान नहीं मिला। पुरूष की दृष्टि में नारी की स्थिति उस जूते की है ज्यों जब तक नया रहता है, उसमें चमक निकलती रहती है। स्त्रियों के सौन्दर्य की काई पर फिसलने वाली पुरूष जाति ने आज से नहीं, सदा से स्त्रियों का अपमान किया है। पुरूष अपने सामाजिक अधिकारों के बल पर स्त्री को अबला बनाता है। नारी की स्वतंत्रता छीन ली जाती है। "वह

देखती है कि बादल अपनी मौज में घूमते हैं, बिजली उल्लास के वशीभूत होकर कड़कती है, फूल अबोध बच्चों की तरह खिलखिलाते हैं, प्रकृति में सर्वत्र यही स्वतंत्रता है, तो नारी पराधीनता का अभिशाप क्यों भोगे।"[12]

आज की नारी को अपनी इस दयनीयता से विद्रोह है। लेकिन पुरूष जानता है कि नारी सब कुछ होने पर भी नारी है। स्त्री का मार्ग सेवा एवं त्याग का है। वह पुरूष की दासी है। पुरूष की आज्ञा का पालन करना ही उसका धर्म है। विष्णु प्रभाकरजी के "बन्दिनी" नाटक में उमा अपने ससूर कालीनाथ के अंधविश्वास के चक्रव्यूह में फँस जाती है। फँसने के बाद वह पीसती जाती हैं। उसे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रह जाता। वह एक पाषाण की मूर्ति बन जाती है। कालीनाथ की अंधी भावना के कारण उमा का प्रेम, वात्सल्य जैसी भावनाओं का खून हो जाता है। कालीनाथ के कारण सारे परिवार का प्यारा बच्चा अनु चल बसता है तो उसका दोष उमा पर ही आता है। अन्त में उमा पुरूष के इस शोषण से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या करती है। विष्णु प्रभाकर के "ये रेखाएँ ये दायरे" नाटक को कुमुद कहती है, "आप पुरूष समाज पर यह सिध्दान्त लागू क्यों नहीं करते। इसलिए न कि पुरूष शक्तिशाली है, उसे अधिकार है नियम बनाने का, नियम पालन करनवाने का। आप सब पुरूष हैं····आप मुझे दुर्बल समझते हैं कि नारी की सहायता करने का पुरूष को अधिकार है और इसी आधार पर वह उसे अपनी बना सकता है। अपनी सम्पत्ति, अपनी चरणदासी, अपनी प्रेमिका, पत्नी, दासी सब एक ही सिक्के के भिन्न-भिन्न नाम हैं। इन्हीं को कवि लोग प्राणेश्वरी, प्राणवल्लभा, चिरसंगिनो, चिर प्रियतमा और न जाने क्या-क्या कहकर पुकारते हैं। नारी को और भी अपंग बनाने के लिए दासता की जंजिरों को और भी जकड़ने के लिए।"[13]

आजतक नारी का जीवन पुरूषावलम्बी रहा है। इसी कारण समाज में उसकी भूमिका गौण रही है। विलासियों ने और कवियों ने नारी को केवल विलास और उपभोग का साधन माना। परिवार में नारी केवल माता, पत्नी, भगिनी और कन्या के रूप में ही सीमित रही। पुरूष ने नारी को दबा दिया और उसका विकास रोक दिया। "जिस दिन स्त्री पुरूषों का भय त्याग देगी, उसी दिन वह उस पर वास्तविक प्रेम कर सकेगी। बलवान मन और बलवान हृदय ही प्रेम का पात्र हो

सकता है।"[15] स्त्री-पुरूष दोनों परिवार के आवश्यक अंग हैं। एक के अभाव में दूसरा अपूर्ण है। स्त्रियों को सामाजिक जीवन में अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए स्वतन्त्रता जरूरी है। "अब और नहीं" नाटक में मंजरी कहती है, "विद्रोह माँ भी कर सकती थी, परन्तु संस्कारों की अंधी जकड़ ने उसकी स्वतन्त्र सत्ता को नष्ट कर दिया। किसी को दोष देने से कुछ नहीं होगा। कभी कोई एक व्यक्ति दोषी नहीं होता। हमें आपको, उस चक्रव्यूह में न फँसकर अपना मार्ग आप प्रशस्त करना होगा।"[15]

नाटककार ने हमें यह बताने का प्रयास किया है कि केवल एक पुरूष ही नहीं, बल्कि समाज ही नारी के शोषण का कारण है। आज की नारी ने विधात से समान अधिकार का वर माँगते समय, पुरूष की तरह अनेक को प्यार करने की क्षमता माँग ली है। "बन्धन तो मृत्यु है, जीवन नहीं। लेकिन हम हैं कि मृत्यु को ही जीवन मानकर जीते रहते हैं। मैं बन्धन मुक्त होकर जीना चाहती हूँ इसलिए····

"आओ अपना दीपक आप बनें हम,
खोजे अपने पथ को अपने आप
चलने को निर्द्वन्द और निर्भय, निष्काम।"[16]

इस प्रकार "अब और नहीं" नाटक की नायिका शान्ता के माध्यम से विष्णु प्रभाकरजी ने नारी को शोषण से मुक्ति लेने के लिए खुद अपना मार्ग ढूँढने को कहा है। अतः प्रभाकरजी ने अपने नाटकों में नारी-शोषण की समस्या का चित्रण किया है।

ख· <u>किसान के शोषण की समस्या</u> : यह समस्या उस समाज की है, जिनका जीवन पूर्णतः कृषि पर अवलम्बित है। जमींदारी व्यवस्था के अनुसार भूमि का अधिपति जमींदार होता है। जमींदारों ने किसानों की जमीन छिनकर उन्हें आर्थिक दृष्टि से पंगु बना दिया और उन्हीं की जमीन पर मजदूरों के रूप में रखा गया। ये मजदूर किसान अपने जीवन यापन के लिए जमींदारों के यहाँ रात-दिन परिश्रम करते रहे। किसानों की इस विवशता और मजबुरी का लाभ उठाकर जमींदारों ने

इनका शोषण आरम्भ किया। जमींदारी बड़ी क्रूरता के साथ कृषकों से कर वसूल करते थे। इस प्रकार अन्याय और अत्याचार से वे कृषकों का रक्त चुसते थे। इन जमींदारों के शोषण का भार दमनीय कृषक को उठाना पड़ता था। दिन-रात खेत में खून-पसीना एक करने वाला कृषक दिन भर में स्वयं एक समय खाकर निर्वाह करता था। अन्न से कोठे भरने वाला और दूध की नदियाँ बहाने वाला स्वयं ही भूखा रहता था। साथ में उसके नन्हें-मुन्ने भी दूध के लिए तरसते थे। किसान का खेत का साथी बैल भी चारे के लिए तरस उठता था। तो किसान का मन हाहाकार से गूँज उठता था -

"बैलों के ये बन्धु, वर्ष भर क्या जानें, कैसे जीते हैं ?
जुबाँ बन्द, बहती न आँख, गम खा,शायद आँसू पीते हैं ?"[17]

श्री विष्णु प्रभाकरजी ने अपने रूपान्तरित नाटक "होरी" में भारतीय किसान की जीवन-गाथा का चित्र उपस्थित किया है। होरी एक भारतीय किसान है। वह मन से बड़ा उदार है लेकिन उसकी दरिद्रता, उनकी लाचारी, उसकी गरीबी आदि के कारण वह मजदूरी करता है। बहुत-सी दुर्बलतायें उसे विरासत से मिली हैं। फिर भी होरी अपनी आस्था से मूँह नहीं फेरता, वह अपनी जमीन और घर की प्रतिष्ठा के लिए अपनी बलि देता है। कर्ज से मुक्ति पाना और अपने घर को प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए सतत परिश्रम करना होरी का जीवन क्रम बन जाता है। वह चुपचाप सारे कष्टों को और अन्यायों को सहता है। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से किसान के शोषण की समस्या की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

कृषक भारतीय संस्कृति की आत्मा है। कृषि प्रधान भारत देश का कृषक यदि दुःखी है तो सारा भारत दुःखी है। उसकी शक्ति और सम्पन्नता से ही भारत का सौभाग्य जग सकता है। लेकिन आज अपना यह कृषक असहाय है। क्षणभर में वह आजतक बुरी तरह पीसा जा रहा है। कृषक मात्र भारी कर के रूप में चुस-चुस कर अपनी मिट्टी से, अपने भाग्य निर्माण के अधिकार से वंचित हो रहा है। नगर सभ्यता की धारा जो ग्रामीण जीवन के विरोध में उभरी है, उसके अनुसार

आज किसान का बेटा भी अपने बाप का साथ नहीं देता। होरी का बेटा गोबर कहता है, "पालने में तुम्हारा क्या लगा, जब तक बच्चा था, दूध पिला दिया फिर लावारिस की तरह छोड़ दिया, जो सबने खाया वही मैंने खाया, मेरे लिए दूध नहीं आता था, मक्खन नहीं बंधा था, मैं झूठ कह रहा हूँ और अब तुम चाहती हो, दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा कर्जा चुकाऊँ, लगान दूं, लड़कियों का ब्याह करूँ।"[18]

गोबर अपने कर्तव्य से विमुख रहना चाहता है। क्योंकि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति उसके निर्धन माता-पिता नहीं कर पाते। इसलिए वह माता-पिता का बोझ उठाने को भी तैय्यार नहीं है। इस तरह होरी शोषित और दयनीय किसानों का नेतृत्व करता है। नाटककार ने यहाँ किसान की शोषण और आर्थिक समस्या का चित्रण किया है।

3· परिवार की आर्थिक समस्या

नयी शिक्षा प्रणाली और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के कारण समाज में ज्यों प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुई परिवार की आर्थिक समस्या उसीका परिणाम है। उच्च शिक्षा प्राप्त किये हुए आज के युवक और युवतियाँ फैशन की दुनिया में घूम रहे हैं। गृह-कार्यों में उनका मन जरा भी नहीं लगता। बल्कि गृह-कार्यों के प्रति उनके मन में अरूचि पैदा होती है। और परिवार में आर्थिक संकट निर्माण होता है। जब किसी मध्यमवर्गीय परिवार में अभिजात्य वर्ग की लड़की ब्याह दी जाती है। तो उसका पति उसकी आर्थिक स्थिति सँभालने में असमर्थता प्रकट करता है। आधुनिक युग की बढ़ती हुई फैशन और बेरोजगारी ही आर्थिक समस्या का मूल कारण है। आज जब संयुक्त परिवार में अनेक सदस्यों में से एक या दो ही सदस्य अपने परिवार का आर्थिक खर्चा चलाते हैं, तो उन दोनों की आय से परिवार के सभी सदस्यों की आशा-आकांक्षा की पूर्ति नहीं होती। तब यहाँ पारिवारिक संघर्ष निर्माण होता है और उसका परिणाम परिवार के विघटन में होता है।

आधुनिक शिक्षित युवक और युवतियाँ अपनी इच्छानुसार रोजगार चाहते हैं और मनचाहा रोजगार न मिलने पर अपने को बेरोजगार समझकर परिवार की आर्थिक स्थिति और भी बिकट कर देते हैं। तो कुछ अपने स्वाभिमान के कारण

परिवार को दयनीय अवस्था में डाल देते हैं। परिवार की आर्थिक व्यस्तता के कारण समाज में चोरी, डकैती, शरीर विक्रय, बीमारी और भूखमरी आदि अन्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

विष्णु प्रभाकरजी ने "श्वेत कमल" नाटक में परिवार की आर्थिक समस्या का चित्रण किया है। इस नाटक की बिन्दू एक दफ्तर में काम करती है। लेकिन उसके इस कमाई से परिवार का गुजारा नहीं होता। वह अपनी गरीबी की हालत से परेशान होती है। परिवार की आर्थिक समस्या के कारण उसके अरमानों का खून होता है। उसकी छोटी बहन नीलिमा परिवार के इस हालत के कारण न मनपसन्द कपड़ा पहन सकती है और न अच्छे ढंग का खाना खा सकती है। वह चाहती है कि ऊँचा लिबास पहनके, बन सँवर के कॉलेज जाय। लेकिन उसका सपना-सपना ही रह जाता है। अपने परिवार की आर्थिक समस्या के कारण वह अभावग्रस्त, कुण्ठाग्रस्त बनती है। इस तरह विष्णुजी ने अपने नाटकों में परिवार की आर्थिक समस्या का चित्रण किया है।

4· <u>सुधारकों के पाखण्ड की समस्या</u>

आज के युग में सभी समाज सुधारक सामान्य जनता की दृष्टि से समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते हैं। लेकिन आज के सभी समाज सुधार के कार्य कार्यकर्ताओं की पाखण्ड से भरे हुये हैं। पाखण्डी सुधारक समाज-सुधार के मूल में व्यावसायिक वृत्ति अपनाये हुए हैं। जिन्होंने अपने पाखण्ड एवं स्वार्थ से सामाजिक जीवन को कलंकित किया है। समाज में ऐसे लोग मुखौटे पहनकर घूमते हैं। और भोली जनता इनके मुखौटे देखकर उनके जाल में फँस जाती हैं। जब जनता के सामने इनके चेहरे के उपर का नकाब उतारा जाता है, तभी इन पाखण्डियों का सच्चा रूप जनता के सामने आता है।

धर्म और भगवान के नाम पर जीने वाले धार्मिक पाखण्डियों की भी इस समाज में कमी नहीं हैं। आज भी धार्मिक पाखण्डी साधू का वेश धारण करके देहातों में घूमते हैं। और भोली भाली गरीब जनता को फँसाते हैं। दिन-ब-दिन समाज की व्यावसायिक व्यवस्था में शोषण और पाखण्ड को बल मिलता जा रहा है। देश के शासक और इन पाखण्डियों में आज कोई फर्क नहीं है। अपने देश के नेता

अपने देश की समस्याओं की ओर ध्यान देने की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय समस्या एवं सुधार की बातें ही जनता को सुनाते हैं। देश का सच्चा भक्त होने का दिखावा करते हैं। नेताओं की निरर्थक नारेबाजी, दोहरा व्यक्तित्व, चरित्र हीनता, योजनाओं की विफलता, थोथे वचन आदि का चित्रण समस्या नाटकों में देखने को मिलता है।

विष्णु प्रभाकरजी के "कुहासा और किरण" नाटक में इस समस्या को दिखाया गया है। इस नाटक में कृष्णचैतन्य एक नेता है, लेकिन वह राजनीतिक पीड़ितों को दी जाने वाली पेन्शन लेते हैं। तो उमेशचन्द्र एक जाने-माने और सम्माननीय समाजसेवक हैं। लेकिन उन्होंने इसी लोकप्रियता का लाभ उठाया है। जनता के सामने इनका ढोंग कायम रहा है। ढोंगी नेता कृष्णचैतन्य अपनी सेक्रेटरी सुनन्दा से कहता है - "तुम तो जानती ही हो मैं निर्धन व्यक्ति हूँ। राष्ट्र के प्रति मेरी सेवाओं के उपलक्ष्य में राज्य मुझे ढाई सौ रूपये मासिक ही तो देता है। उसी से किसी तरह जीवन-यापन करता हूँ। शेष जो कुछ तुम देखते हो वह सब राष्ट्र का है। राष्ट्र के हित में ही खर्च होता है, क्योंकि राष्ट्र की समस्या मेरी समस्या है। सेठ झुनझुनवाला, सेठ उमेशचन्द्र और बिपिन बिहारी जैसे व्यक्ति इसीलिए तो मेरी सहायता करते हैं।"[19] नाटक के अंत में अमूल्य सबके राज जानता है और ये सामाजिक पाखण्डी बेनकाब हो जाते हैं। उनके मुखौटे उतारकर सच्चे स्वरूप को जनता के सामने प्रस्तुत होते हैं। इन पाखण्डियों ने समाज में फैलाये कुहासे को नाटककार ने अमूल्य के द्वारा नष्ट किया है।

इस प्रकार नाटककार ने समाज-सुधारकों के पाखण्ड की समस्या को सामाजिक परिवेश से अभिव्यंजित किया है। आज जितने तरह के शासन तंत्र हैं, वे सभी लुटेरों के घर ही हैं। नाटककार ने पाखण्डी समाज-सुधारकों की वास्तविक स्थिति का पर्दाफाश किया है। समाज में इन पाखण्डियों का ज्यों बोलबाला है, उसका भाण्डा फोडते हुए नाटककार ने उस पर तीव्र प्रहार किया है।

5· <u>शिक्षा-समस्या</u>

ज्ञान मानव की तीसरी आँख समझा जाता है। जीवन के रोटी, कपड़ा और मकान इन तीन जीवनावश्यक जरूरतों के साथ ही शिक्षा की भी सख्त जरूरत

है। अनेक साहित्यकारों ने जनसाधारण को कुछ ऐसा संदेश देना चाहा कि जिसका पालन हो तो यहाँ का आज का जंगल कल के सुंदर उपवन में बदल सकता है। और उस संदेश के पालन की पहली अनिवार्यता है शिक्षित होना। जिस समय यहाँ का जनसाधारण स्वयं अभावों में पल कर भी दूसरों को सुविधाएँ उत्पन्न कर देता था, उस समय उसके शोषण का एक मात्र कारण था उसका निरक्षर होना। उसकी स्थिति का जिस दिन दूसरों ने लाभ उठाया उसी दिन दुनिया का उसके प्रति सहानुभूतिहीन व्यवहार स्पष्ट हुआ था। ऐसे निरक्षर लोगों को जानवरों से बदतर जीवन बिताने पर मजबूर करने वाले लोग शिक्षित थे। अज्ञान केवल व्यक्ति जीवन या समाज जीवन में ही नहीं बल्कि राष्ट्र के समूचे जीवन में संकट उत्पन्न कर देता है। अज्ञान के कारण जनता को एक ऐसी दल-दल में उलझाया जा रहा है जिससे वह कभी निकल ही न सके। अपनी हीनता और दीनता की भावना को तिलांजलि देकर स्वाभिमान के साथ जीने के लिए शिक्षा की जरूरी है। हमारे आज के समाज में ऊँच-नीच, शहरी-देहाती शासक-शासित का भेदभाव और विषमता का मूल कारण अज्ञान ही है। अशिक्षा का भीषण अभिशाप लेकर सामान्य जनता आज तक जी रही है। उपेक्षित, शोषित, पीड़ित जनता को आत्मगौरव के साथ जीने के लिए शिक्षा की संजीवनी शक्ति भर देना जरूरी है। तब तक अज्ञान की ओट में चल रही धोखाबाजी बन्द नहीं होगी।

"कुहासा और किरण" नाटक में प्रभा साहित्यकार है और सुनन्दा कृष्णचैतन्य की प्रायव्हेट सेक्रेटरी है। यह दोनों नारियाँ शिक्षित होने के कारण व्यवहारकुशल और प्रतिभाशाली है। जब उन्हें कृष्णचैतन्य, विपिन बिहारी और उमेशचन्द्र अग्रवाल इन तीनों देशद्रोहियों का असली चेहरा दिखता है। तो ये दोनों भी नारियाँ उनके प्रति विद्रोह करती हैं। प्रभा का भाई अमूल्य पर चोरी का इल्जाम लगाया जाता है। प्रभा अमूल्य के बारे में टमटा से कहती है, "कैसे बताऊँ कैसे जीवन बिताया उन्होंने ? भैया होशियार थे। मेरे पिता की सहायता से किसी तरह शिक्षा प्राप्त की, लेकिन आज के युग में शिक्षा पाने का अर्थ काम पाना तो नहीं है।

की, लेकिन आज के युग में शिक्षा पाने का अर्थ काम पाना तो नहीं है। देश के असंख्य नौनिहालों की तरह वह भी भटकता रहा और अन्त में वहाँ पहुँच गया जहाँ आप उसे देख रहे हैं। लेकिन मैं जानती हूँ उसने चोरी नहीं की है, कर ही नहीं सकता वह···।"[20] टमटा साहब उन मगरमच्छों को गिरफ्तार करता है। प्रभा, सुनन्दा और अमूल्य जैसे आज के शिक्षा से प्रभावित युवक-युवतियों ने शोषक वर्ग के विरूद्ध आवाज उठायी और वर्तमान समाज को नया रूप प्राप्त हो गया। सामाजिक जीवन स्तर पर क्रान्तिकारी परिवर्तन किये गये।

आज के युग में भी कुछ मात्रा में नारियों के जीवन में शिक्षा का चाँद नहीं निकला है। पुरूष जाति ने इसी बात का फायदा उठाकर नारी पर अन्याय और अत्याचार करना आरम्भ किया। समाज की मर्यादाओं ने उसे बंदी बना दिया। लेकिन नारी को यह मालूम नहीं था कि, "नियति ने और इश्वर ने स्त्री के व्यक्तित्व में ताला लगाकर उसकी चाबी चुपचाप स्त्री के ही आँचल में बाँध दी है। स्त्री खोयी-खोयी-सी दुनिया भर उस चाबी को खोज रही है।"[21]

श्री विष्णु प्रभाकरजी के "डॉक्टर" और "टगर" नाटक में शिक्षा समस्या का चित्रण किया है। इन नाटकों में यह प्रवृत्ति देखने में आती है कि यदि किसी का विवाह कम अवस्था में किसी सामान्य पढ़ी-लिखी स्त्री के साथ होता है, और वह बाद में पढ़-लिखकर किसी बड़े पद का अधिकारी हो जाता है तो अपने उन्नत सामाजिक स्तर के अनुरूप अपनी पत्नी को न पाता हुआ उसे त्यागकर किसी पढी-लिखी लड़की से विवाह कर लेता है। विष्णु प्रभाकर ने इसी समस्या को आधार बनाकर "डॉक्टर" और "टगर" जैसे समस्या नाटकों की रचना की है। "डॉक्टर' नाटक की मधुलक्ष्मी एक अनपढ नारी होने के कारण इंजिनिअर सतीशचन्द्र शर्मा उसका त्याग कर देता है। पति-परित्यक्ता मधुलक्ष्मी के मन पर गहरी चोट लगती है। अपने अभाव की पूर्ति करके प्रतिशोध लेने की तीव्र भावना उसे मन में उद्‌भूत होती है। वह अपने भाई दादा के सहयोग से पढ़-लिखकर डॉक्टर बन जाती है उसे अपने गँवार मधुलक्ष्मी नाम से बेहद घृणा होती है। फिर वह डॉक्टर अनीला बनकर सतीशचन्द्र शर्मा का स्वाभिमान चूर-चूर करती है। लेकिन अनीला को अपने पति से बदला लेने की इच्छा शिक्षा के कारण ही पूर्ण होती है। विष्णुजी के "डॉक्टर'

नाटक में कम-पढ़ी-लिखी मधुलक्ष्मी का व्यक्तित्व दुनिया के सम्मुख एक हारी हुई नारी का है, तो डॉक्टर अनीला का व्यक्तित्व दुनिया से दो कदम आगे चलने वाली आधुनिक शिक्षित नारी का है। नाटककार ने इस प्रकार शिक्षा समस्या पर प्रकाश डाला है।

6· विवाह की समस्या

स्त्री-पुरूष के परस्पर विश्वास, सहयोग, अधिकार रक्षण को ही विवाह कहते हैं। भारतीय समाज अनेक खोखली रूढियाँ और कुप्रथाओं से ग्रस्त हैं। इसी कारण भारतीय समाज में बालविवाह, बहुपत्नीवादी प्रथा प्रचलित हैं। समाज में विवाह के कड़े बन्धनों के कारण वर्ग संघर्ष निर्माण हुआ। प्रत्येक वर्ग में विवाह के अलग-अलग नियम बने। लेकिन विवाह के सभी नियम स्त्री के लिए ही बन्धनकारक थे। उस समय स्त्री को पिता के कहने पर बिना सोचे-समझे एक अजनबी पुरूष से विवाह करना पड़ता था। स्त्री उस परम्परागत विवाह प्रथा को अपना धर्म समझकर चूप बैठती थी। लेकिन उस विवाह के समय समाज यह भी नहीं देखता था कि उस स्त्री और पुरूष की आयु में कितना अन्तर है। पुरूष यदि बूढा हो तो भी कम आयु वाली युवति को उस बूढ़े की पत्नी बनने के दुष्परिणाम जल्द ही निकल आते थे। अपनी छोटी-सी उम्र में वह युवती विधवा बन जाती थी। लेकिन फिर भी हमारा समाज ऐसी विवाह पद्धति को भारतीय संस्कृति का आदर्श समझते हैं।

श्री विष्णु प्रभाकरजी का "युगे-युगे क्रान्ति" एक ऐसा महत्वपूर्ण सामाजिक नाटक है जिसमें विवाह-समस्या को आधार बनाकर विवाह-संस्था के परिवर्तित दृष्टिकोनों को उजागर किया गया है।नाटककार ने विवाह के परिवर्तित मूल्यों को चित्रित किया है। प्यारेलाल अपने युग की मान्यताओं को तोड़कर एक विधवा से ब्याह कर क्रान्तिकारी बन जाता है और यही क्रान्तिकारी प्यारेलाल आज की नई पीढ़ी के लिए दकियानुसी बन जाता है। वह विधवा विवाह तो करता है लेकिन स्त्री के प्रति उनके विचार हैं - "नारी की शोभा कोमलता और सुन्दरता है। पौरूष और वाचालता नहीं।" उनके मतानुसार स्त्री को चार दीवारों से बाहर नहीं आना चाहिए। जब कि उनकी बेटी शारदा अपने भाषण में कहती है - "नारी पुरूष

से किसी भी बात में पीछे नहीं है। उसके अधिकार समान हैं, उसके कर्तव्य भी समान हैं। इसलिए मेरी प्यारी बहनों, हमने निश्चय किया है कि पुरूषों के साथ-साथ हम पिकेटिंग करेंगी।"[22] ऐसी शारदा विमल से विवाहबद्ध होकर प्यारेलाल को परम्परावादी और अपने को क्रान्तिकारी घोषित करती है। लेकिन आगे चलकर वही शारदा और विमल अपने पुत्र के सामने पुरानपंथी साबित होती हैं। क्योंकि वे नहीं सह सकते कि अपना पुत्र प्रदीप जैनेट जैसी परधर्म ईसाई युवती से शादी करें। अपने धर्म की सीमा लाँघकर जैनेट को अपनाने वाला क्रान्तिकारी प्रदीप अपनी सन्तान के सामने सड़ी गली परम्परा बन जाता है। क्योंकि उसने परधर्म की लड़की से क्यों न हो पर विवाह किया था लेकिन उनकी सन्तान "विवाह" जैसी संस्था को ही नकार स्वैर-यौनाचार में विश्वास रखती है। "विवाह" उनके अनुसार यौवनाचार का मात्र एक सर्टीफिकेट है। उनकी नयी मान्यता के अनुसार अनिरूद्ध कहता है, "जब तक हम युवा हैं हमें प्रेम चाहिए। प्रेम के लिए सर्टीफिकेट की आवश्यकता नहीं होती। प्रेम मुक्ति में है, बंधन में नहीं। विवाह स्त्री की गुलामी का पट्टा है, इसलिए बन्धन है।"[23]

प्रेम के लिए कोई मर्यादा या सीमा बाह्य जगत् में नहीं रही। प्रेम की ज्यों सहज भावना है उसे विवाह के रूप में बाँधकर दो प्रेमी अपने व्यक्तित्व का विकास करते हैं। लेकिन प्रेम और यौन सम्बन्ध सिर्फ पति और पत्नी में हो तो ही। लेकिन आज प्रेम और विवाह एक ही व्यक्ति के साथ हो ऐसा नहीं है। आज के कई युवक-युवतियाँ प्रेम एक से करती हैं और विवाह दूसरे से। मानो आज के युग में यह एक फैशन ही बन गई है। आज विवाह को वे एक बन्धन समझते हैं। केवल यौन-भावना को ही महत्व देते हैं। इसलिए आज प्रेम विवाह की प्रथा जोरों पर है। लेकिन इस प्रथा में कर्तव्य की गरीमा, प्रेम की सहिष्णुता, उदारता और त्याग नहीं है। उसमें वासना की अतृप्ति, असंतोष और विलास की प्रचण्ड भावना ही प्रधान होती है। आज की फैशनपरस्त नारियाँ गृह-कार्यों में अरूचि रखती हैं और परिवार में आर्थिक संकट उपस्थित करती हैं। लेकिन इस प्रेम-विवाह प्रथा के कारण विवाह के अवसरों पर समाज की खोखली मर्यादाओं के कारण ज्यों आर्थिक संकट निर्माण होता था, वह आज दूर हट गया है।

नारी जागरण ने भारतीय महिला समाज में यह भाव उत्पन्न कर दिया कि किसी भी कन्या के विरूद्ध उसका विवाह कर देना अन्याय है। आधुनिक भारतीय कन्याओं ने उस प्राचीनता के प्रति आज विद्रोह किया है। एक विद्रोही कन्या के विचार इसप्रकार हैं - "मैं नहीं कहती कि हमारे माँ-बाप हमसे प्यार नहीं करते, अपनी लड़कियों को मोटरें देते हैं, मकान देते हैं। वह इसलिए देते हैं कि उनकी लड़कियों को कोई तकलीफ न हो, वे सुख से रहें। लेकिन वे हजारों रूपये अपनी लाडली बेटियों के लिए खर्च कर देंगे। बस उन्हें अपने मन का साथी नहीं चुनने देंगे।"[24] आज की युवक-युवतियाँ प्रियतम-प्रेयसी वाली रंगीन दुनिया के स्वप्नों में जीना चाहते हैं। आज वह पहले जैसी नारी है जो अपने विवाह के बाद अपने पूर्व प्रेमी को याद कर रोती रहे। आज वह विवाह को केवल एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार करती है। "आज की युवक-युवतियाँ जब तक अपने कन्धों पर स्वयं भार नहीं उठा सकते, तब तक वे विवाह करना ही नहीं चाहते।"[25]

विवाह एक सामाजिक संस्था है, पारिवारिक सुख के लिए ज्यों वैवाहिक बन्धन थे उसमें आज परिवर्तन हो गया है। आधुनिक युग की नयी चेतनाऔर संवेदना ने स्त्री-पुरूष के वैवाहिक जीवन को लेकर जीवन सम्बन्धी धारणाओं में परिवर्तन किया है। परम्परागत सामाजिक मूल्यों को कुचलकर आज की युवा पीढ़ी ने आन्तर्जातीय विवाह को भी मान्यता दी है। पहले विवाह माता-पिता द्वारा, उनकी इच्छा से सम्पन्न होते थे। आज की युवक-युवतियाँ स्वयं अपना जीवन साथी चुन लेते हैं। इस प्रकार विवाह के सभी नियमों में आज परिवर्तन दिखाई देता है और बदलते नियमों के साथ ही विवाह की समस्याएँ भी बढ़ रही हैं।

7· <u>अंधविश्वास की समस्या</u>

भारतीय समाज आजतक अंधविश्वास की चेतना में ही साँस ले रहा है। अंधविश्वास वृत्ति के कारण सामाजिक जीवन कलुषित बन गया है। धर्म और भगवान के नाम पर समाज विनाश की ओर जाता रहा है। आज भी समाज में मूर्ति-पूजा में अत्यधिक विश्वास है और पुरोहित वर्ग ने ईश्वर की कल्पना अनेक रूपों में करके जनता को दिशाहीन बनाया है। जनता के लिए धर्म एक दिखावा है। धार्मिक पाखण्डी समाज को गलत दिशा की ओर ले जा रहे हैं। गलत परम्पराओं, अंधविश्वासों

और संस्कार रूढ़ियों के कारण समाज दल दल की ओर जाने लगा। ब्रम्ह समाज और आर्य समाज ने धार्मिक कुरीतियों और अंधविश्वासों का विरोध कर नवीन धारणा की चेतना जागृत की। आर्य समाज ने मूर्ति पूजा का खण्डन कर दिया। लेकिन आर्य समाज द्वारा प्रबल विरोध होने पर भी मूर्ति पूजा हिन्दू धर्म से पूर्ण रूप से बहिष्कृत न हो सकी। देवालयों में पत्थर की मूर्तियों के सम्मुख रूढ़िवादी और अंधविश्वासी व्यक्ति नतमस्तक होकर अपने श्रम, समय और धन का अपव्यय करते रहे, जिसका दुरूपयोग आज भी पुजारी और महंत करते हैं।

समाज में आज तक कई प्रकार के अंधविश्वास प्रचलित हैं। आधुनिक नाटककारों ने भारतीय समाज में व्याप्त इस ढोंग, पाखण्ड और अंधविश्वासों की निरन्तर धज्जियाँ उड़ायी हैं। श्री विष्णु प्रभाकरजी का "बन्दिनी" नाटक अंधविश्वास पर आधारित हैं। नाटककार ने समाज की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इस नाटक में सही वातावरण निर्माण किया है। समाज में आज भी कहीं न कहीं अनेक अंधविश्वासों से मोहाविष्ट हैं। कस्बों और गाँवों में आज भी देवी अवतरित होती हैं। नगरों और महानगरों में भी उसकी पूजा में कमी नहीं आयी। नित्य नई माताएँ अवतार लेती हैं और रात रात जागरण समारोह चलते हैं। विज्ञान कितनी ही प्रगति कर गया हो, मनुष्य के चरण भले ही दूसरे ग्रहों पर पड़ चुके हों परन्तु मन उसका अभी भी किसी न किसी प्रकार के अन्धविश्वास से ग्रस्त है। "बन्दिनी" नाटक की कथा अंधविश्वास पर गहरे चोट करती है। परिवार का प्रमुख व्यक्ति कालीनाथ है, ज्यों हमेशा देवी की पूजा में लगा रहता है। एक दिन कालीनाथ के सपने में देवी माँ आकर कहती है कि तुम मेरी आराधना मत करो। तुम्हारे घर में ही छोटी बहू उमा के रूप में साक्षात देवी माँ मौजूद है। तब से कालीनाथ उमा को साक्षात् देवी माँ समझकर उसकी पूजा करने लगे। कालीनाथ की तरह सभी लोग उसके दर्शन और पूजा करते हैं। लोगों को लगता था कि देवी माँ ने अपनी बहुत-सी समस्याओं को सुलझाया है। लेकिन एक दिन जब अपने ही परिवार की सावित्री का बेटा अनु ज्वर से परेशान होता है तो कालीनाथ को लगता है कि देवी माँ अनु को बिना वैद्य की दवा से ठीक कर देगी। यहीं पर सब लोगों की श्रध्दा को ठेंस पहुँचती है। उमा देवी अनु को बचा नहीं सकी। यह देखकर सभी लोगों का अन्धविश्वास नष्ट हो जाता है। लोग उमा को भला-बुरा कहने लगते हैं। उमा

के आँखों पर ज्यों परदा था, वह हट जाता है। उमा कहती है - "स्वप्न झूठा था। हां, स्वप्न झूठा था। देवता की वेदी पर रक्त नहीं बह सकता। मैं देवी नहीं हूँ। मैं अपने अनु को नहीं बचा सकी। मेरी आत्म-प्रवंचना से एक वंश नष्ट हो गया, जिसको मैं प्यार करती थी उसी को अपने हाथ से मार डाला। अपनी वेदी पर ही अपने प्रिय की बलि चढा दी। मेरी अपनी ही करतुत ने मुझसे वह सब छीन लिया जो मुझे प्रिय था। अब मुझसे जिया नहीं जा सकेगा। मेरे प्रभु। अब कोई कारण मेरी रक्षा नहीं कर सकेगा।"[26]

नाटककार ने यह बताने की कोशिश की है कि आधुनिक युग में भी मनुष्य किस प्रकार अंधविश्वासों के पीछे घूमता-फिरता रहता है। नाटककार ने मनुष्य के इस दोष को हमारे सम्मुख रखते हुए अंधविश्वास की समस्या पर प्रकाश डाला है। आधुनिक युग में भी मानव अंधविश्वासों से घिरा हुआ है। देहातों में औषधि और (उचार) की अपेक्षा भूत-प्रेत और देवी-देवताओं पर अधिक विश्वास है। जन-मानस में अनेक आशंकाओं की धारणा किसी न किसी रूप में आज भी बनी हुई है। कई बार सुधारकों ने इसके विरोध में आंदोलन छेड़ा है। नाटककार के मतानुसार हम सबको इनका साथ देना चाहिए। सुधारकों ने राष्ट्रीय भावनाओं और आशंकाओं को जागृत करने के लिए प्राचीन देवी देवताओं की नवीन व्याख्या की। जनता के सम्मुख धार्मिक उत्सवों का नया दृष्टिकोन रखा गया। इस आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य था अंधविश्वास की समस्या को जड़ से उखाड़कर फेंक देना। इससे धर्म-सुधार और समाज सुधार होकर मानवीय प्रयासों से एक ऐसे धर्म की स्थापना की जायेगी जिसमें मानव कल्याण की भावना निहित हो। नाटककार श्री विष्णु प्रभाकरजी का यही उद्देश्य है।

8· भ्रष्टचार की समस्या

देश की स्वतंत्रता के साथ ही जनता ने गुलामी की जंजीरे उखाड़कर फेंक दी और खुली हवा में साँस लेने का आनन्द पाया। लेकिन स्वाधीन भारत के नवनिर्मित सरकार के सम्मुख ग्रामोद्धार और देश का आर्थिक विकास का प्रश्न खड़ा हुआ। उसके लिए सरकार ने पंचवर्षीय योजनाएँ बनायी। बढ़ती जनसंख्या और खाद्यानों के अभाव

के कारण योजनाओं का सफल होना बहुत ही कठिन बात थी। रोजगार की समस्या दिन-प्रतिदिन बढती जा रही थी। इस समस्या में कृषक, श्रमिक वर्ग और मध्यमवर्गीय शिक्षित ही पीसा जाने लगा। पूँजीपतियों, व्यापारियों तथा तस्करों ने अत्यधिक लाभ उठाकर देश की आर्थिक सत्ता को अपने हाथ में केन्द्रित कर लिया और समाज शोषक और शोषित इन दो वर्गों में बाँटा गया। परिणामस्वरूप एक ओर भोग विलास तो दूसरी ओर ऋणग्रस्तता, भूखमरी आदि के कारण सामान्य जनता के सामने जीवन यापन की समस्या खड़ी हो गई। जीवन निर्वाह हेतु रात-दिन काम करना पड़ा। कम वेतन पाने वाला व्यक्ति आडम्बर, फैशन और अनावश्यक मिथ्या प्रदर्शन के कारण धन का अपव्यय करने लगा और अपनी आर्थिक स्थिति को शोचनीय बनाता गया। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विवश होकर बेईमानी के नये-नये ढंग खोजने लगा। क्योंकि ईमानदारी की कमाई से विलासी जीवन नहीं जी सकता था। इन सभी कारणों से समाज में आर्थिक दृष्टि से भ्रष्टाचार उत्पन्न हुआ।

श्री विष्णु प्रभाकरजी ने अपने "टगर" और "कुहासा और किरण" नाटकें में युग के वातावरण की समाज और देश की दयनीय एवं भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। नाटककार ने वर्तमान भ्रष्टाचार की समस्या का चित्रण करते हुए आधुनिक भारत का सामाजिक और राजनीतिक समस्या को राष्ट्रीय परिवेश में एक महत्वपूर्ण तथ्य के आधार पर स्पष्ट आचरण और मुखौटाधारियों पर सीधा कुठाराघात किया है। भारतीय समाज में यह समस्या तेजी से फैल गयी। नौकरशाही के कारण इस समस्या ने भयंकर और विकराल रूप धारण कर लिया समाज में तो यह स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी कि सरकारी अफसर तो बिना रिश्वत के काम ही नहीं करते थे। "टगर" नाटक में ठाकूर और माथूर दोनों भ्रष्टाचारी हैं। ठाकूर तस्कर व्यापारी हैं, अंतर्राष्ट्रीय दल के सदस्य हैं। तो माथूर ठेकेदारों से रिश्वत लेते हैं। उनका भी संबंध तस्करों से हैं। ठाकूर और माथूर दोनों भी एक नंबर के भ्रष्टाचारी हैं। टगर को जब इन दोनों का राज मालूम होता है तो टगर कमिश्नर नाजीम साहब को इन मुखौटेधारियों का रहस्य बताती हैं। कमिश्नर के कहने पर मेजर पुरी दोनों को गिरफ्तार करते हैं। वास्तव में सरकारी नौकर हो या अफसर दोनों भी जनता के सेवक होते हैं। किन्तु ये जनता से रिश्वत लेकर अपनो सेवा करवा रहे हैं। नाटककार का कहना है कि, "आप रिश्वत देनेवालों की निन्दा

कर सकते हैं, लेकिन लेनेवालों की कभी नहीं कर सकते, क्योंकि वे सरकारी अफसर हैं।"[27] शासनतंत्र में जब तक अकुशल और रिश्वतखोर लोग रहेंगे तब तक भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति को और भी प्रोत्साहन मिलता रहेगा।

नाटककार ने "कुहासा और किरण" नाटक में वर्तमान भ्रष्टाचार का चित्रण किया है। इसमें नेता कृष्णचैतन्य एक नम्बर के गद्दार एवं भ्रष्टाचारी आदमी हैं। वे राजनीतिक पीड़ितों को दी जाने वाली पेन्शन लेते हैं। विपिन बिहारी सम्पादक का काम करते हैं। वे सरकार से कागज कोटा तो बहुत लेते हैं, मगर संख्या में छपवाते हैं कम। उस कागज को वे काला बाजार में बेचते हैं, जिसके मालिक उमेशचन्द्र हैं। दोनों भी कृष्णचैतन्य के नजदीकी दोस्त हैं। इसी कारण सरकारी और गैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों में उनकी गहरी पैठ है। समाज की दृष्टि में इसमें एक नेता है, दूसरा सम्पादक और तीसरा समाज सेवक है। इसी लोकप्रियता का उन्होंने फायदा उठाया है। जनसेवा का स्वाँग करके उन्होंने समाज की आँखों में धूल झोंकी है। उनको भय रहता है कि पत्रकार अमूल्य कहीं उनके भ्रष्टाचारी मुखौटों पर हाथ न डाले। पत्रकार का कर्तव्य सम्पादक विपिन बिहारी अमूल्य को समझाता है - "पत्रकार व्यवस्था के दोषों को समाज में फैले रहे भ्रष्टाचार को और उस पर पल रहे मगरमच्छों को बेनकाब करता है। वह व्यवस्था और जनता दोनों का प्रहरी है। दोनों को सचेत करनेवाला।"[28]

अमूल्य इन भ्रष्टचारियों का राज जानता है, तो उसे ही फँसाया जाता है। लेकिन प्रभा और सुनन्दा अमूल्य के कार्य को चलाते हुए कृष्णचैतन्य, विपिन और उमेश के भ्रष्टाचार तथा चोर बाजारी का रहस्य खोल देते हैं। अन्त में सभी भ्रष्टाचारी शैतानों के मुखौटे उतारकर उनके सच्चे स्वरूप को जनता के सामने प्रस्तुत किया जाता है। नाटककार ने राजनीतिक एवं समाज में फैले भ्रष्टाचार के कुहासे को नष्ट करने के लिए युवकों को प्रेरित किया है। तो दूसरी ओर समाज के कृत्रिम नेताओं, सम्पादकों एवं पूँजीपतियों तथा व्यापारियों की जीवन घटनाओं का रहस्योद्‌घाटन किया है। आज के समाचार पत्रों की पोल खोलते हुए नाटककार ने उनके भ्रष्टाचारी वृत्ति पर तीखा व्यंग्य कसा है। समाज में आज सभी ओर रिश्वतखोरी और काला बाजारी का ही बोलबाला है। आज शासन तंत्र में रिश्वत लेना एक सामान्य बात

बन गयी है। न्यायालय में आज न्याय देवता भी भ्रष्ट हो गयी है। आज की सरकार तो केवल सत्ता के पीछे लगी हुई है। इसलिए वह भ्रष्टाचार रोकने में पूर्णतया असमर्थ है। समाज में सार्वजनिक जीवन के बीच ज्यों चोर दरवाजाहै, उसे ढूँढकर तोड़ देने का काम आज की युवा पीढ़ी ही कर सकती है। हमारे देश की शासन का शत्रु हमारा शत्रु समझकर उसके विरोध में युवकों को क्रान्ति करनी चाहिए।

इस प्रकार नाटककार ने भ्रष्टाचार की समस्या को आधुनिक भारत के सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में चित्रित किया है।

3· <u>नारी-समस्या</u>

आधुनिक समाज की सबसे बड़ी समस्या व्यक्ति है। समस्त संसार के सभी क्षेत्रों में आज ज्यों क्रान्ति हो रही है, उसके मूल में व्यक्ति की ही समस्या काम कर रही है। स्वार्थीनता, समता और बंधुत्व की भावना में व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का ही आदर्श विद्यमान है। देश, समाज और व्यक्ति की वर्तमान दुरावस्था अज्ञान के कारण ही है। देश में नवजागरण काल लाने के लिए लोकशिक्षा के द्वारा लोकमत निर्मित होना जरूरी है। मानव जीवन आज इतना विस्तृत है कि सभी स्थानों में एक-सी ही समस्याएँ उत्पन्न होने लगी है। व्यक्ति अपने जीवन की विषम परिस्थितियों से संघर्ष कर उन्हें अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करता है। जब उसे सफलता मिलती है उसे पाकर भी व्यक्ति अपने हृदय में अपने जीवन की विफलता देखता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मानव आशावादी प्राणी हे, ज्यों अपने जीवन में निरन्तर संघर्षरत रहता है।

नाटककार विष्णु प्रभाकरजी ने अपने भिन्न दृष्टिकोण से वर्तमान जीवन के प्रश्नों को उठाकर कलात्मक स्पर्श से व्यस्त किया है। जीवन की तरह स्थिर गति से चलने वालीएक दुनिया उनके नाटकों में है। समाज में स्त्री-पुरूष दोनों का अस्तित्व समान है। भारतीय समाज की रचना पुरूष द्वारा की गई है। इसी कारण पुरूषों की भाँति स्त्रियों को सामाजिक जीवन में अपने व्यक्तित्व विकास की स्वतन्त्रता नहीं है। प्राचीन युग से नारी मानवीय भूमि पर न होकर केवल वासनापूर्ति का साधन समझी जाने लगी। समाज की अनेक बुराइयों की जड़ में नारी की आर्थिक

पराधीनता और उस पर लादे गये तरह-तरह के बंधन हैं। युगों-युगों से हमारा समाज नारी को तरह-तरह से प्रताड़ित करता आया है जिसके कारण उसका स्वतंत्र अस्तित्व कभी उभर नहीं सका। अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए उसे अनेक समस्याओं से जूझना पडा। सामाजिक बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए उसने समाज से संघर्ष किया। एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है कि नारी स्वावलम्बी और स्वतंत्र हो और यह तभी सम्भव हो सकता है जब नारी पुरूष के चंगुल से छूटे। इसी कारण नाटककार विष्णु प्रभाकरजी ने अपने अनेक नाटकों में नारी की सामाजिक स्थिति पर विशेष रूप से ध्यान देकर ऐसे विषयवस्तु को चुना है जहाँ नारी का एक व्यक्तित्व बन पाया है। नाटककार ने नारी की विविध समस्याओं का चित्रण करके नारी को उचित सम्मान प्रदान करने की कोशिश की है।

1· <u>उपेक्षित या परित्यक्ता नारी की समस्या</u>

भारतीय समाज पुरूष प्रधान समाज है। इस समाज में पुरूष ने नारी के लिए कदम कदम पर अनेक सामाजिक मर्यादाओं का निर्माण किया है। जिसमें नारी उसकी दासी बनकर रह गयी है। नारी आज तक पुरूष को अपना परमेश्वर समझकर उसके साथ अपना जीवन बिताती थी। भारतीय समाज में नारी सामाजिक बन्धनों से जकड़ी जा चुकी है। उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा पर्याप्त रूप से पीड़ादायक ही होती है। अपने जीवन में उसे पल-पल ताडनाएँ और व्यंग्य सहने पड़ते हैं। पुरूष के लिए जब नारी इच्छित बातों की पूर्ति नहीं करती तो पत्थर दिल पुरूष उसको कष्ट पहुँचाता है और इसी समय के बीच नारी की कोई कमजोरी पुरूष को मिल जाय तो उस कमजोरी के बल पर पुरूष उसे अपनी दासी बना लेता है। नारी विवाह से पहले जब किसी पुरूष से सम्बन्ध रखती है और यदि उस बात का पता विवाह के बाद पति को लगता है तो वह नारी अपने पति से उपेक्षित होती थी। आज भी अनेक ऐसे पुरूष हैं ज्यों अपने पत्नी से विवाह के समय इच्छित धनराशी न मिलने पर पत्नी का त्याग कर देते हैं। पति द्वारा उपेक्षित नारी के मन पर गहरी चोट लगती है। पति के प्रति उसके मन में बदले की आग भभक उठती है और उसके मन में जो क्रिया-प्रतिक्रियाओं का चित्र उभरता है, उसी को चित्रित करने का प्रयत्न नाटककार विष्णु प्रभाकरजी ने किया है।

नाटककार ने अपने "टगर" और "डॉक्टर" नाटक में उपेक्षित एवं परित्यक्ता नारी की समस्या का चित्रण करते हुए उसके गहराई तक उतारने का प्रयास किया है। नाटककार ने एक ऐसी नारी के मनोविज्ञान का चित्रण किया जो पति द्वारा परित्यक्त कर दी गई है। "डॉक्टर" नाटक में इस परित्यक्ता नारी के अन्तर्द्वन्द का सफलता से चित्रण किया है। इंजिनियर सतीशचन्द्र शर्मा पत्नी मधुलक्ष्मी को शिक्षित न होने के कारण त्याग देता है और दूसरा विवाह कर लेता है। नारी का व्यक्तित्व जब किसी वजह से खंडित होता है, तो वह छटपटा जाती है। मधुलक्ष्मी अपने पति के इस दुर्व्यवहार से संतप्त होती है। वह अपने भाई की सहायता से पढ़-लिखकर शिक्षित ही नहीं होती, बल्कि डॉक्टर बन जाती है। उसे अपने मधुलक्ष्मी नाम से घृणा होती है और वह अपना मधुलक्ष्मीयह नाम त्यागकर डॉक्टर अनीला बन जाती है। लेखक का बल केवल मधुलक्ष्मी के नाम पर नहीं, बल्कि इस बात पर है कि उपेक्षित नारी अपने चरित्र का उत्कर्ष किस प्रकार करती है। "कभी-कभी दुख और दर्द इन्सान को ऊँचा उठा देते हैं लेकिन यह दूसरी बात है कि बहुत कम इन्सान उस ऊँचाई पर ठहर सकते हैं।....नहीं ठहर सकते क्योंकि वह ऊँचाई कच्ची होती है।"[29]

अनीला के नर्सिंग होम में उसके पति की दूसरी पत्नी मरीज के रूप में दाखिल होती है, तो उसकी उपचार की समस्या को लेकर डॉ.अनीला के मन में कर्तव्य और संस्कार भावना का गहन एवं भयानक अन्तर्द्वन्द होता है। पति परित्यक्ता होने के कारण उसके मन में प्रतिशोध की गहरी प्रतिक्रिया होती है। चोट खाई हुई नागिन की भाँति वह शर्मा के गृहस्थ जीवन पर आघात करना चाहती है। वह अपने भाई से कहती है, "नहीं, आप बिलकुल नहीं जानते। आप नारी को नहीं जानते, आप चोट खाई नागिन को नहीं जानते।"[30] अनीला के अन्दर इतनी गहरी पीड़ा है कि वह तिल-तिलकर जलती है। उसके हृदय में टीसें उठती हैं, छाती आहों से छलनी हो रही है। पति से दी हुई नफरत के कारण अनीला के मन के संयम का बाँध टूटकर, उसके मन में डॉक्टर केशव के प्रति प्रीति-तन्तु जुड़ जाता है। डॉक्टर केशव के संसर्ग में आने के कारण अनीला के यौन-सुलभ विचारों में क्रान्ति आती है। लेकिन अन्त में अनीला अपने मन को रोक लेती है और प्रतिकार की दुर्बलता को दबाती हुई मरीजा का सफल ऑपरेशन कर देती है। पति शर्मा

के अपकारों का उत्तर देकर अनीला नारी के प्रतिकार का आदर्श उपस्थित करती है। नाटककार ने पुरूष की अनुदारता के प्रति उपेक्षित एवं परित्यक्ता नारी के विद्रोह, स्वावलम्बन और चुनौती का यथार्थवादी चित्रण किया है। मधुलक्ष्मी पति के तिरस्कार को एक चुनौती के रूप में लेती है और एक सफल डॉक्टर बनकर अपने पैरों पर खड़ी होती है।

विष्णु प्रभाकरजी के "टगर" नाटक में भी इसी समस्या का चित्रण किया गया है। इन दोनों नाटकों की विशेषता यह है कि इसके रचनाकाल में बीस वर्ष का अवधि है। फिर भी इतने समय के बाद आपको वही समस्या नज़र आयी। टगर आधुनिक नारियों की जटिल मानसिकता की ओर संकेत करती है। टगर एक ऐसी नारी की कहानी है जो परित्यक्ता पत्नी के अन्तर्मन की पीड़ा की गाथा व्यक्त करती है और पुरूष से बदला लेने के साहसिक निर्णय में दिन-प्रतिदिन पतन के गर्त में गिरती है। वह अपने पहले प्रेमी और पति की बेवफाई का बदला दुनिया की समस्त पुरूष जाति से लेना चाहती है। क्योंकि उसके पति शेखर ने टगर को इसीलिए छोडा था कि वह आधुनिक न होने के कारण पत्नी के रूप में उसके योग्य नहीं है। इस गम्भीर और भयानक चोट के कारण टगर अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व बदल देती है। अनेक पुरूषों को अपने जाल में फँसाकर बरबाद कर देती है। लेकिन अन्त में वह जान पाती है कि प्रतिशोध की आग में उसने स्वयं को ही जलाया है। वह शेखर को अन्त तक अपने मन से नहीं निकाल पाती और स्वीकार करती है कि, "इतने खेल-खेलकर अब किसी और की होने की आशा मुझे नहीं है। भूतकाल बीत जाता है पर मिटता नहीं।"[31]

नाटककार ने प्रस्तुत नाटकों में परित्यक्ता नारी की संघर्ष भावना को चित्रित किया है। अपने ही घर में अपने ही पति द्वारा स्वीकार्य न होने पर नारी की कितनी दर्दनाक दशा होती है, इस बात का ध्यान रखते हुए पुरूष वर्ग नारी हृदय की गहराईयों को जानता तो आज नारी की परिस्थिति कुछ और ही होती। नाटककार ने आज के समाज में परित्यक्ता नारी का वास्तविक चित्रण करते हुए इस समस्या को दृष्टिगोचर किया है।

2· समाज में नारी का स्थान

प्राचीन भारतीय समाज में पुरूषों की अपेक्षा नारियाँ अधिक सम्मानित थी। उस समय नारी को पूजा के योग्य समझा जाता था। बाद में नारी का स्थान गौण माना गया और वह पुरूष की केवल भोग्या और सम्पत्ति मात्र रह गयी। वह पुरूष के हाथ का खिलौना बन गई। पुरूष केवल अपने स्वार्थ के लिए ही नारी को अपनाता है। पारिवारिक और सामाजिक बन्धनों की जंजिरों से नारी को कसकर जकड़ता है। नारी को ऐसे समाज में जीना दुश्वार हो गया है। आज तक समाज ने नारी को अपने स्वार्थ के लिए ही इस्तेमाल किया है। समाज में नारी की स्थिति पशु के जीवन से बढ़कर नहीं है। इसका प्रधान कारण है पुरूष प्रधान समाज। पुरूष समाज की रचना नारी के लिए एक शाप है। पुरूष ने समाज की रचना अपने अनुकूल की है। समाज के सभी अधिकार अपने पास रखकर नारी को परावलम्बी बनाया है। रीतिरिवाज तथा सामाजिक बन्धन केवल नारी के लिए ही बनाये गये हैं। इन बन्धनों के कारण नारी पुरूष की जीवनसंगिनी या सहधर्मिणी नहीं, बल्कि दासी बन गई है। नारी केवल चुल्हा , चौंका और बच्चे सँभालने की ही अधिकारिनी है।

श्री विष्णु प्रभाकर ने नाटकों में समाज की स्थित नारी के रूपों का चित्रण किया गया है। नाटककार नारी को स्वतंत्रता एवं अधिकार प्रदान करना चाहते हैं। नारी और पुरूष दोनों अन्योन्याश्रित हैं। वे एक-दूसरे के सहारे ही जीवन पथ पर आगे बढ़ते हैं। जन-जीवन के विकास में दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। लेकिने पुरूष वर्ग अपनी अहं भावना के कारण नारी को दासी के रूप में देखना चाहता है। पुरूष किसी न किसी प्रकार नारी में हीन भावना भर देता है। विष्णुजी के "अब और नहीं" नाटक में नारी और पुरूष के अधिकार के प्रश्न को उठाया है। वीरेन्द्र प्रताप शान्ता को सिर्फ अपने आप में खोई हुई देखना चाहते हैं। भले ही शान्ता को सितार बजाने या चित्र निकालने का शौक हो, लेकिन वीरेन्द्र प्रताप शान्ता के पति होने के नाते यह सब नहीं चाहते। क्योंकि वे शान्ता के पति होने के कारण उनके कहने के अनुसार ही शान्ता को अपना जीवन बिताना चाहिए। वीरेन्द्र प्रताप शान्ता की भावनाओं को दबाये रखना चाहते हैं। शान्ता डॉ·मलिक से कहती है, "मैंने वही चाहा जो वह चाहते थे। मैने वही किया जो उनकी

इच्छा थी। वही कहा जो वह कहलवाना चाहते थे। वही विश्वास किया जो उनका विश्वास था। सारा जीवन उनकी इच्छा-अनिच्छा, विश्वास-अविश्वास से घिरी रही मैं। मैं घर की रानी नहीं थी, दासी थी। उन्होंने मुझे अपनी इच्छाओं की दासी बना लिया था।"[32]

वीरेन्द्र प्रताप शान्ता का इलाज करना चाहते हैं। लेकिन शान्ता की बीमारी शारीरिक नहीं मन की है। अपनी इस बीमारी को शान्ता आत्महत्या से मिटाती है। प्रस्तुत नाटक के द्वारा नाटककार ने यह बताने का प्रयास किया है कि पुराने जमाने से अभी तक समाज में नारी का शोषण होता है। हर परिस्थिति में पुरुष नारी को दबाये रखकर नारी पर अपना वर्चस्व जमाये रखता है। इसके लिए कोई एक पुरुष जिम्मेदार नहीं है। वीरेन्द्र प्रताप दर्शकों को सम्बोधित करता हुआ कहता है - "मुझे आपके सामने अपना दोष स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है। शान्ता की हत्या मैंने की है लेकिन···लेकिन अकेले मैंने नहीं की। उस हत्याकांड में आप भी मेरे सहायक थे। अगर आप मेरे सहायक न होते तो शायद मैं वह जघन्य पाप न कर पाता। आप सोचिये इस बात को, गहराई से सोचिये जरा।"[33]

नाटककार ने नारी को समाज में सही स्थान दिलाने के लिए नारी चरित्र को अपने नाटकों में ऊँचा उठाया है। "कुहासा और किरण" नाटक में प्रभा और सुनन्दा ऐसी निर्भिक एवं साहसी नारियाँ हैं, ज्यों भ्रष्टाचारी नेताओं को बेनकाब करके गिरफ्तार करवाती है। ये दोनों ऐसी देशप्रेमी नारियाँ हैं ज्यों देश के प्रति, समाज के प्रति और मानव के प्रति आम आदमी का जो कर्तव्य है, उसे निभाती है। "टूटते परिवेश" में करूणा एक ऐसी नारी है, जिसमें मध्यमवर्गीय परिवार के नारी का व्यक्तित्व छिपा हुआ है। करूणा एक कुण्ठाग्रस्त नारी है। वह आदर्श पत्नी और माता भी है। परिवार के हर एक सदस्य का ध्यान रखती है। नाटककार ने उसे आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया है। "बन्दिनी" नाटक में उमा अंधविश्वास के चक्रव्यूह में फँसी हुई नारी है। तो विश्वेश्वरी और पुंटी ग्रामीण अंधविश्वासू नारियों का नेतृत्व करती है। "युगे-युगे क्रान्ति" और "टूटते परिवेश" में शारदा जैनेट, अन्विता, दीप्ति, मनीषा आदि नारियाँ परम्परा के प्रति विद्रोह करती हुई दिखाई देती हैं। तो "श्वेत-कमल" में नीलिमा और बिन्दु बिकट आर्थिक परिस्थिति में जीनेवाली नारियाँ हैं। तो पूनम फॅशन-परस्त, स्वेच्छाचारी नारी के

रूप में चित्रित की गई है। इस प्रकार नाटककार विष्णु प्रभाकरजी ने अपने नाटकों के माध्यम से समाज में परम्परा से चले आ रहे नारी के सभी रूपों का चित्रण किया गया है।

समाज में नारी और पुरूष में समानता होना अत्यन्त जरूरी है। दोनों में से एक के निर्बल तथा अशक्त हो जाने से समाज का अस्तित्व अनिश्चित-सा हो जाता है। एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए नारी स्वावलम्बी और स्वतंत्र होना आवश्यक है। लेकिन भारतीय समाज में नारी पुरूष के दमनचक्र, परम्पराओं का बोझ और झूठी मान-मर्यादाओं की जंजीर से जकड़ी हुई है। नाटककार ने अपने नाटकों में ऐसी नारियों का चित्रण किया है ज्यों अपने जीवन में मुक्ति की तलाश करती है। समाज में अपना स्थान निश्चित करने के लिए अनवरत कोशिश करती है। इस प्रकार नारी समाज में अपनी एक अलग पहचान बनाकर अपने जीवन को सफल बनाती है।

3· विवाह प्रथा और नारी समस्या

नारी और पुरूष दोनों भी समाज के आवश्यक अंग हैं। लेकिन समाज का उनकी ओर देखने का दृष्टिकोण अलग-अलग है। मानव जीवन में विवाह एक सामान्य तथा स्वाभाविक घटना है जो समाज के लिए आवश्यक है। घर-परिवार बसाने के लिए दो या अधिक स्त्री-पुरूषों में आवश्यक सम्बन्ध स्थापित करने और उसमें स्थिरता लाने के लिए कोई-न-कोई संस्थात्मक व्यवस्था प्रत्येक समाज में विवाह के नाम से जानी जाती है। विवाह प्रत्येक समाज की संस्कृति तथा सभ्यता का एक आवश्यक अंग होता है। चाहे वह रूढ़िग्रस्त समाज हो या सभ्य समाज हो। समाज में परिवार के जन्म के लिए विवाह साधन की अत्यावश्यकता है। हर समाज में विवाह के अपने-अपने नियम हैं। अलग-अलग रूढियाँ प्रचलित है। विवाह संस्था का एक मात्र उद्देश्य है घर-गृहस्थी बसाना और बच्चों के लालन-पालन के लिए एक स्थायी व्यवस्था का निर्माण करना। स्त्री-पुरूष में स्वाभाविक यौन इच्छा होती है, लेकिन यह यौन-इच्छा सामाजिक नियमों की एक स्वीकृत रीति विवाह के अनुसार ही पूर्ण की जाती है।

भारतीय समाज में विवाह सम्बन्धी परम्परागत मान्यताएँ हैं। इन्हीं परम्परागत मान्यताओं के कारण नारी जीवन भर पुरूष की इच्छा की कठपुतली बनकर रह जाती है। परम्परागत विश्वासों पर आधारित विवाह प्रथा नारी शोषण का ही एक रूप है। इस बात का ध्यान रखते हुए नाटककार विष्णु प्रभाकर विवाह को बन्धन मानते हैं। युगों से त्रस्त भारतीय नारी विवाह के पुराने मूल्यों के कारण ही पुरूष की दासता में पीसी जा रही है। नाटककार विवाह सम्बन्धी परम्परागत मान्यताओं के विरूद्ध हैं। उन्हें यह मान्य नहीं कि सदियों से चली आई अहं भावना के कारण पुरूष नारी पर एकाधिकार बनाये रखे और नारी जीवन भर अनिच्छापूर्वक पति के साथ रहकर पतिव्रत धर्म का पालन करती रहे। नाटककार ने नारी को केंद्र में रखते हुए विवाह संस्था के परिवर्तित दृष्टिकोनों को उजागर किया है। साथ में विवाह सम्बन्धी समस्याओं को हमारे सम्मुख रखते हुए विवाह के परिवर्तित मूल्यों को चित्रित किया है।

अ· <u>विधवा-विवाह समस्या</u> : श्री विष्णु प्रभाकरजी परम्परागत, जर्जर और रूढिबद्ध विवाह प्रथा को नारी-शोषण का एक मुख्य कारण मानते हैं। भारतीय समाज में विधवा को हीन दृष्टि से देखा जाता है। उसकी उपेक्षा की जाती है। हिंदू समाज की यह विडम्बना है कि विधवा को सहानुभूति के स्थान पर तीखे व्यंग्यों को झेलना पड़ता है। विधवा की दयनीय स्थिति भारतीय समाज के बिखरे हुए विचारों एवं विकृत मस्तिष्कों का परिचय देती है। आज विधवा की यह समस्या नई नहीं, तो प्राचीन विधवा का विकृत रूप ही है। सती प्रथा निषेधक कानून ने विधवा को जिन्दा जलाने से तो बचा लिया, लेकिन समाज ने उसे जिन्दा जलने से भी बढ़तर जिन्दगी दी। विधवा का पुनर्विवाह हमारे समाज में निंदनीय समझा जाता था। कई समाज सुधारकों ने इस समस्याको सुलझाने का प्रयत्न किया, लेकिन इस बर्बर समाज ने उसे बंदि मुक्त नहीं किया। श्री विष्णु प्रभाकरजी ने विधवा विवाह-समस्या का चित्रण करते हुए विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया है।

विष्णु प्रभाकरजी के "युगे-युगे क्रान्ति" नाटक में सामाजिक जीवन की विविधता को उसकी गहराई के साथ चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। नाटककार ने विधवा-विवाह के माध्यम से पुराने मूल्यों पर चोट करते हुए सामाजिक क्रान्ति

की निरंतर प्रक्रिया को स्पष्ट किया है। कल्याणसिंह का युवा पुत्र प्यारेलाल भरे बाजार में लाला सगुनचंद की विधवा बेटी कलावती से विवाह करने की प्रतिज्ञा करता है। प्यारेलाल अपनी सफाई पेश करते हुए अपनी माँ रामकली से कहता है - "मैं कहता हूँ माँ, पुरूष को जब एक से अधिक शादी करने का अधिकार है तो नारी ने ही कौन-सा अपराध किया है। पुरूष एक स्त्री के जीते-जी दूसरी स्त्री ला सकता है लेकिन नारी भरी जवानी में और जवानी में ही क्यों, बचपन में ही पति के मर जाने पर दूसरी शादी नहीं कर सकती। उसने अपने पति को आँख उठाकर देखा तक नहीं। छोटी-सी नादान उम्र में ही वह विधवा हो गई है। वह यह भी नहीं जानती कि जिन्दगी किस चिड़िया का नाम है। विवाह होता क्या है ? लेकिन यह बर्बर समाज उसे दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं देता। हां, तड़पने का अधिकार देता है। यौवन को बरबाद करने का अधिकार देता है। चोरी-चोरी पाप करने का अधिकार देता है। लेकिन दूसरी बार अग्नि को साक्षी करके विवाह करने का अधिकार नहीं देता। विधर्मियों और विदेशियों ने हमारी इन्हीं कुरीतियों से लाभ उठाया है। वे ताकतवर हुए हैं और हम कमजोर। उनकी संख्या बढी है, हमारी घटी है। हमारी जाति में दुराचार फैला है। हमारी नारियाँ घर छोड़कर भाग जाने को मजबूर की जाती हैं। लेकिन अब हम यह अत्याचार नहीं होने देंगे। हमने निश्चय कर लिया है।"[35]

समाज में विधवा नारी की जो स्थिति है उसका वास्तव चित्रण नाटककार ने किया है। नारी पर होने वाले इस अत्याचार के विरूद्ध प्यारेलाल आवाज उठाता हैं। अपने माता-पिता के पुरातन रूढ़ियों को तोड़कर सगुनचंद की विधवा बेटी कलावती से विवाह करता है। प्यारेलाल के पिता कल्याणसिंह पुरानपंथी है, जो अपने बेटे को धर्म को कलंकित करने वाला पापी समझते हैं। उनके मतानुसार विधवा को सती बनकर जीना चाहिए। यही शास्त्र का विधान है। लेकिन आर्य समाज के सिद्धान्तों से प्रभावित प्यारेलाल विधवा से विवाह करके समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करता है। प्यारेलाल कहता है, "आज पहली बार मुझे अपना भला करने का मौका मिला है। उस भले में ही समाज का भला है, धर्म का भला है।"[35] इस प्रकार नाटककार ने विधवा विवाह समस्या का सफल चित्रण किया है।

ब· प्रेमविवाह की समस्या : नारी ने स्वयं सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष किया है और समाज में अपना अलग स्थान बना लिया है। प्राचीन काल से नारी को पुरूष के नियंत्रण में रहना पड़ता था। भारतीय समाज में कन्याओं के विवाह माँ-बाप ही निश्चित करते थे। अपनी पुत्री की इच्छा-विरूद्ध किसी भी असभ्य पुरूष से उसका विवाह तय कर देते थे। उस समय कन्या के मन का जरा भी खयाल नहीं किया जाता था। इसी कारण उस कन्या को उस अजनबी पुरूष के साथ अपना सारा जीवन बिताना पडता था। उसे अपनी भावनाओं को दबाकर घुटन में जीना पडता था। वह घुटन की जिन्दगी जीते-जीते समाज में ऊब गयी थी। उस बीच पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भारत की संस्कृति में घुल-मिल गया और नारी ने अपने समाज से विद्रोह किया। समाज की विवाह प्रथा जो परम्परागत रूढ़ियों से जुड़ी थी, उसे तोड़कर नारी स्वच्छन्द प्रेम में विश्वास करने लगी।

आधुनिक नारी आज स्वयं अपना जीवन साथी का चुनाव करती है। विवाह संस्था को अपने अस्तित्व की रक्षा के हेतु नारी उसे मनचाहा रूप देना चाहती है। आज की युवक-युवतियाँ प्रेम के क्षेत्र में धन, निर्धन एवं जाति आदि के भेद को स्वीकार नहीं करती। लेकिन भारतीय समाज स्वच्छन्द प्रेम विवाह को पाप और समाज विरोधी आचरण मानता है। प्रेम विवाह से भी क्या नारी-जीवन सुखी है ? आयोजित विवाह से नारी के जीवनमें एक-न-एक समस्या उलझी रहती है, तो प्रेम विवाह से भी अनेक समस्याएँ उद्‌भूत होती हैं। अनेक नारियाँ प्रेम के नाम पर धोखा खाती हैं। अहंकारी पुरूष प्रेम का नाटक करके नारी के/ अपने जाल में फँसाता है। "श्वेत-कमल" नाटक में रंजना एक भोली-भाली एवं स्वछन्दन्द नारी थी। वह एक युवक से प्रेम करती थी। अपने प्रेमी के इश्क में वह पागल हो जाती है। एक दिन वह अपने प्रेमी के साथ घर से भाग जाती है। लेकिन रंजना का प्रेमी एक नम्बर का दगाबाज निकला। रंजना को उसने वेश्या बनाना चाहा। तो रंजना के दिल पर गहरी चोट लगती है और वह आत्महत्या कर देती है। नाटककार ने यहाँ प्रेम से निर्मित समस्या का चित्रण किया है। नर-नारी में यौन आकर्षण के कारण प्रेम होता है लेकिन आगे होने वाले परिणामों से वे परिचित नहीं होते।

कभी-कभी किसी एक समाज के पुरूष से अन्य समाज की नारी प्रेम करती है तो उनके सामने जाति के बंधन खड़े हो जाते हैं। लेकिन आज आन्तर्जातीय विवाह होने लगे हैं। नाटककार विष्णु प्रभाकरजी ने प्रेम विवाह समस्या के अंतर्गत अन्तर्जातीय समस्या को अपने "युगे-युगे क्रान्ति" नाटक में उठाया है। शारदा अपनी इच्छा से विवाह करके अपने युगीन समाज से क्रान्ति करती है। लेकिन वही शारदा अपने बेटे प्रदीप के अंतरधर्मीय विवाह के समय पुरानपंथी बन जाती है। विमल अपनी पत्नी शारदा से कहती है, "लेकिन मैंने तो यह भी स्वीकार कर लिया कि दफ्तर में काम करने वाली छोटी जाति की एक ईसाई लडकी मेरी बहू बने, पर उसने मेरी कोई बात स्वीकार नहीं की। करता कैसे ? वह माँ-बाप को दकियानुसी जो समझता है।"[36] प्रदीप और जैनेट का यह आंतर्जातीय विवाह है, जो दो भिन्न धर्मों के युवा-युवतियों का विवाह बन्धन है जो समाज परिवर्तन के साथ बदलता रहता है। उन्हें संयुक्त परिवार से विभक्त परिवार अच्छा लगता है। प्रदीप का बेटा अनिरूद्ध रीता से प्रेम करता है। अनिरूद्ध और रीता तो विवाह संस्था में विश्वास ही नहीं करते। अनिरूद्ध का कथन है - "विवाह के मंत्र या मॅजिस्ट्रेट के सर्टिफिकेट से स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में कोई अन्तर नहीं पडता। और यदि यह आवश्यक भी हो तो यह काम बुढापे में ही हो सकता है। क्योंकि तब साथी बदलना सम्भव नहीं है। लेकिन जब तक हम युवा हैं हमें प्रेम चाहिए। प्रेम के लिए सर्टिफिकेट की आवश्यकता नहीं होती। प्रेम मुक्ति मे है, बंधन में नहीं। विवाह स्त्री की गुलामी का पट्टा है। इसलिए बन्धन है।"[37]

नाटककार ने अपने "टूटते परिवेश" में भी प्रेम-विवाह समस्या का चित्रण किया है। इस नाटक में विश्वजीत परम्परावादी है। उनकी बड़ी लड़की मनीषा अपनी इच्छा से प्रेम-विवाह करती है। वह जाति, धर्म, प्रान्त आदि के सभी बन्धन तोड़ देती है। विवेक और जरीना भी स्वच्छन्द प्रेम में ही विश्वास करते हैं। आज प्रेम-विवाह में कोई सीमा या मर्यादा नहीं रही है। प्रेम-विवाह में आज के युग में सहिष्णुता, उदारता और त्याग नहीं है, बल्कि उसमें वासना की अतृप्ति, असंतोष और विलास की प्रचण्ड भावना ही प्रधान होती है। जिसके कारण दिन-प्रतिदिन नव-नवीन समस्याएँ उद्‌भूत होने लगी हैं। लेकिन नाटककार ने प्रेम-विवाह की समस्या पर प्रकाश डालते हुए यह दिखाया है कि प्रेम की जो सहज भावना है,

उसी के विकास मे नारी अपने व्यक्तित्व का विकास करती है।

4· स्त्री-पुरूषों में विषमता की समस्या

नारी और पुरूष जीवन रूपी रथ के दो पहिये हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है। दोनों भी एक-दूसरे के अन्योन्याश्रित हैं। वे एक-दूसरे के सहारे जीवन पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते हैं। अनेक सामाजिक बन्धनों में दोनों गूँथे हुए हैं। जीवन के विकास पथ में दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। इन दोनों पर ही समाज तथा परिवार का ढाँचा टिका हुआ है। इसलिए उनके आपसी सम्बन्धों से ही उनका विकास और उनके विकास से समाज का विकास, देश का विकास सम्भव है। अतः स्त्री-पुरूष सम्बन्ध एक महान सामाजिक समस्या है।

नारी पुरूष की तरह मनुष्य है और पुरूष की तरह उसके कंधों पर समाज का उत्तरदायित्व उतना ही है। समाज की उन्नति और वृद्धि के लिए स्त्रियों के मानसिक और शारीरिक विकास की आवश्यकता है। नाटककार विष्णु प्रभाकरजी ने नारी और पुरूष के बीच जो विषमता की खाई है, उस पर प्रकाश डाला है। नाटककार समाज में नारी की एक अलग पहचान बनाना चाहते हैं और निश्चित रूप से नारी को अपने जीवन में सफल देखना चाहते हैं। पुरूष की तरह नारी को भी समाज में स्वतंत्र रहकर जीवन यापन करने का अधिकार होना चाहिए। अपने जीवन के प्रत्येक कार्य की सफलता के बाद उसका फल खाने का अधिकार एवं समान अवसर नारी को भी देना आवश्यक है। अतः समाज की रक्षा के लिए दोनों का समान होना आवश्यक है। "युगे-युगे क्रान्ति" में शारदा का कथन है - "नारी पुरूष से किसी भी बात में पीछे नहीं है। उसके अधिकार समान हैं, उसके कर्तव्य भी समान हैं।"[38]

विष्णु प्रभाकरजी ने अपने नाटकों में परम्परागत मान्यताओं, रीतीरिवाजों, आदर्शों का खण्डन करके नवीन सामाजिक मान्यताओं की स्थापना की है। समाज में स्त्री-पुरूष के जन-जीवन के विकास के लिए स्त्री-पुरूष के पारस्परिक सम्बन्ध में सामंजस्य होना अनिवार्य है। लेकिन अहंकारी पुरूषने नारी को केवल अपनी इच्छाओं

की कठपुतली एवं दासी समझा है। "अब और नहीं" नाटक में शान्ता अपने पति के बारे में डा॰मलिक से कहती है, "मैंने वही चाहा जो वह चाहते थे। मैंने वही किया जो उनकी इच्छा थी। वही कहा जो वह कहलवाना चाहते थे। वही विश्वास किया जो उनका विश्वास था। सारा जीवन उनकी इच्छा-अनिच्छा, विश्वास-अविश्वास से घिरी रही मैं। मैं घर की रानी नहीं थी, दासी थी। उन्होंने मुझे अपनी इच्छाओं की दासी बना लिया था।"[38] डॉ॰मलिक शान्ता से कहते हैं कि तुम्हें अपने पति के बारे में ऐसा नहीं कहना चाहिए। तो शान्ता हँसकर कहती है, "पति यानी अधिनायक, तभी तो वे मुझे दासी बना सके थे। मैं भूल गयी थी कि मेरी भी कोई स्वतंत्र सत्ता है। जानती ही नहीं थी कि मैं क्या चाहती हूँ। मुझे अब पता लग गया है कि मैं कौन हूँ और क्या चाहती हूँ।"[40]

पुरूषों ने सदा से ही नारी के साथ छल और विश्वासघात किया और नारी अपने निर्बल और परावलम्बी हाथों से पुरूष के चरण पकडती रही। पुरूष उसे सदैव तिरस्कार, घृणा और अपनी वासना की भिक्षा देता रहा। नारी तो भगवान की ऐसी सृष्टि है जो सदा किसी-न-किसी के सहारे जीवन बिताती है। न ही उसे परिवार में कुछ अधिकार है, न ही उसे समाज ने सम्पत्ति का अधिकार दिया है। अधिकार दिया है तो पुरूष की वासना का शिकार बनने का, अन्याय-अत्याचार सहने का, फरियाद करने का। नाटककार विष्णु प्रभाकरजी ने अपने नाटकों में स्त्री-पुरूष विषमता का चित्रण किया है। नारी को पुरूष से कभी माँ के रूप में, कभी पत्नी के रूप में, तो कभी पुत्री के रूप में अन्याय सहना पड़ा। स्त्री और पुरूष में प्राकृतिक अंतर है। दोनों के शरीर भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए बने हैं। इन्हीं प्रयोजनों के कारण समाज में पुरूष का दर्जा ऊँचा है। समाज में स्त्री दूसरे दर्जे की मानव है। इसी कारण हर परिस्थिति में पुरूष नारी को दबाये रखता है। पुरूष सत्तात्मक समाज में नारी की स्थिति पशू से बढ़कर ही पुरूष के बन्धनों के चक्रव्यूह ने नारी को घेर लिया है। नाटककार ने नारी को स्वतंत्रता का संदेश दिया है। "अब और नहीं" में शान्ता अपने अधिकार के लिए अपने पति से विद्रोह करती है। पति की गुलामी से वह छुटकारा पाना चाहती है। पुरूष के बंधनों की बेडियों को काटकर वह कैदखाने से बाहर निकलना चाहती है। शान्ता अपने पति से कहती

है - "देखो यह वह नगर है। इन्द्र की अलका नगरी से भी सुन्दर है। वहाँ न कोई स्वामी है, न दास। सब एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी हैं। कोई हुक्म नहीं देता। कोई हुक्म नहीं मानता। वही नगर मेरा गन्तव्य है।"[41]

इस प्रकार भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष में प्रत्येक स्थान पर विषमता दिखाई देती है। आज समाज रचना में कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, फिर भी स्त्री की मूल भूमिका में ज्यादा परिवर्तन नहीं दिखाई देता। नारी स्वतंत्र रहकर अपना अस्तित्व बनाना चाहती है, लेकिन हर परिस्थिति में नारी को पुरुष दबाये रखने का प्रयत्न करता है। नाटककार विष्णु प्रभाकरजी ने अपने नाटकों में नारी-पुरुष विषमता का चित्रण करते हुए आधुनिक परम्पराओं पर प्रहार किया है और विश्व की समस्त नारियों को उनके स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान करा दी है।

5· <u>नारी-शिक्षा की समस्या</u>

हमारे भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा अभी तक एक बड़ी समस्या के रूप में है। अनेक समाज सुधारकों ने इस समस्या को उखाड़कर फेंक देना चाहा, किन्तु खोखली परम्पराओं ने उनके सामने रूकावटें खड़ी कर दी। कई परिवारों में आज भी लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता है। आज तक समाज में न उसकी शिक्षा की रूचि को परखा गया है और न ही शिक्षा के लिए उसके माँ-बाप का सहयोग मिला है। क्योंकि लड़की को शिक्षा देना याने समाज से दुश्मनी मोल लेने के बराबर था। भारत में ईसाई मिशनरियों ने स्त्री शिक्षा की ओर सबसे पहला कदम उठाया। ब्रम्हो समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी और रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं ने भी इस कार्य में अनमोल कृति की। कई कन्या पाठशालाएँ खोली गई। अनेक अशिक्षित बहनों को शिक्षित बनाना चाहा। आश्रम बनाकर उनके शिक्षा का आयोजन किया गया।

"शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वयस्क होता हुआ व्यक्ति समूह के जीवन और संस्कृति में प्रवेश करता है।"[42] उचित शिक्षा व्यक्ति में ऐसी योग्यताओं को उत्पन्न करती है जिसके द्वारा वह विभिन्न मूल्यों की सृष्टि, सुरक्षा और उपभोग कर सके। नाटककार विष्णु प्रभाकरजी ने नारी-शिक्षा की समस्या पर प्रकाश डालते हुए नारी के जीवन में शिक्षा का होना अनिवार्य मानते हैं क्योंकि नारी को अपना

जीवन बिताने की क्षमता प्राप्त करने के लिए शिक्षा अति आवश्यक है। कई बार कई माता-पिता के सामने लड़की को शिक्षा देने और न देने का प्रश्न खड़ा होता है। इसका कारण यह है कि कुछ माता-पिता ऐसा सोचते हैं कि उच्च शिक्षा पाने के कारण लड़कियाँ बिगड़ जाती है। लेकिन आज के युग में नारी और पुरूष दोनों भी अपनी-अपनी योग्यता के लिए शिक्षा लेना उचित समझते हैं। शिक्षा से वंचित नारी-पुरूष का जीवन एक विडम्बना बन जाता है। इसलिए अपने जीवन विकास में नारी-पुरूष के लिए शिक्षा की बेहद जरूरी है। पुरूष की अपेक्षा आज समाज में नारी शिक्षा से वंचित हैं। शिक्षा के अभाव के कारण नारी को कष्टमय जीवन बिताना पडता है।

नाटककार विष्णु प्रभाकरजी ने नारी-शिक्षा की समस्या का चित्रण अपने "डॉक्टर" नाटक में किया है। यदि किसी का विवाह कम पढ़े होने की अवस्था में किसी सामान्य पढ़ी-लिखी स्त्री के साथ सम्पन्न हो गया है और वह बाद में पढ़-लिखकर किसी बड़े पद का अधिकारी हो जाता है, तो अपने उन्नत सामाजिक स्तर के अनुरूप अपनी पत्नी को न पाता हुआ उसे त्यागकर किसी पढ़ी-लिखी लड़की से विवाह कर लेता है। इस प्रवृत्ति को नाटककार ने अपने नाटक को समस्या का प्रमुख आधार बनाया है। सतीशचन्द्र शर्मा जब विद्यार्थी थे, तभी एक सामान्य पढ़ी-लिखी लड़की मधुलक्ष्मी से विवाह हो जाता है। सतीशचन्द्र शर्मा पढ़ाई समाप्त कर एक इंजिनिअर बन जाते हैं। लेकिन मधुलक्ष्मी वही की वही रह जाती है। सतीशचन्द्र को अब मधुलक्ष्मी अपने सामाजिक स्तर के अनुरूप नहीं लगती और उसका त्याग कर देते हैं। बाद में एक पढ़ी-लिखी लड़की से विवाह करते हैं। पति द्वारा तिरस्कृत एवं परित्यक्ता मधुलक्ष्मी को अपने शिक्षा के अभाव की कारण अपने आप से नफरत होती है। और वह इस अभाव की पूर्ति के लिए अपने भाई की मदद से डॉक्टर बन जाती है। मधुलक्ष्मी के अपने नाम से बेहद घृणा होती है और वह अपना नाम डॉ॰अनीला कर देती है। नाटक में सतीशचन्द्र शर्मा एक आधुनिक शिक्षित पुरूष हैं, जो नारी से कुछ अपेक्षाएँ रखता है। तो मधुलक्ष्मी आधुनिक जीवन में एक ऐसी अशिक्षित नारी है, जो पति द्वारा त्याग दी जाती है। नाटककार ने इसी अशिक्षित नारी की समस्या को आधार बनाकर यह दिखाने का प्रयत्न किया

है कि पत्नी परित्यक्ता होने पर भी किस प्रकार एक डॉक्टर के रूप में अपने चरित्र का उत्सर्ग करती है। नाटक के अंत में जब सतीशचन्द्र शर्मा को पता चलता है कि डॉ·अनीला ही अपनी पहली पत्नी मधुलक्ष्मी है। तब वह डॉ·अनीला को पुकारता जाता है, लेकिन वह बात तक नहीं करती। उसी वक्त अनीला का भाई (दादा) उसे धिक्कारता हुआ कहता है, "यही थी डॉ·अनीला, तुम्हारी पहली पत्नी मधुलक्ष्मी शर्मा, जिन्हें तुमने पंद्रह वर्ष पहले छोड़ दिया था कि अफसर बन जाने के बाद वह तुम्हारे योग्य नहीं रही थी। कम पढ़ी-लिखी थी। सोसायटी में घूम-फिर नहीं सकती थी। बैठ-उठ नहीं सकती थी, खा-पी नहीं सकती थी। मधुलक्ष्मी मर चुकी है। यह डॉ·अनीला है, और तुम्हारे लिए केवल डॉक्टर।"[43]

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने नारी-जीवन में शिक्षा के महत्व को बताया है। नारी-शिक्षा के कारण समाज विकास का मार्ग सुलभ हो सकता है। नारी अपने जीवन के बारे में भला-बुरा सोच सके। नारी जीवन में शिक्षा वह प्रकाश है, जो जीवन के हर अंधकार को ज्योतिर्मय बना देता है। आज की आधुनिक नारियाँ इस अंधकारमय समस्या को नष्ट कर चुकी है।

नारी को शिक्षा देना आवश्यक है, लेकिन नाटककार के मतानुसार शिक्षा प्राप्त नारियाँ, गृहदेवियाँ बनें, फैशन से लोगों को मुग्ध करने वाली परियाँ न बनें। क्योंकि आधुनिक शिक्षा के कुफल भी प्रदर्शित होने लगे हैं। श्री विष्णु प्रभाकरजी ने "टूटते परिवेश" नाटक में इसका चित्रण किया है। आज शिक्षित नारियाँ अशिक्षित नारियों की तुलना में अपना यथार्थ गौरव खो चुकी है। अतः समाज की स्थिति के अनुकूल ही नारी-शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

6· <u>वेश्या-समस्या</u>

श्री विष्णु प्रभाकरजी का ध्यान इस समस्या की ओर भी गया है। उन्होंने अपने "श्वेत-कमल" इस नाटक में इस समस्या का चित्रण किया है। यह समस्या वर्तमान युग की सबसे बड़ी समस्या है। सामाजिक परिवेश दुषित होने के कारण ही इस समस्या का निर्माण हुआ है। कुछ स्त्रियाँ वेश्या-वृत्ति को व्यवसाय के रूप में देखती हैं। क्योंकि उस स्त्री को आर्थिक विषमता के कारण वेश्यावृत्ति को अपनाना

पड़ता है। पुरूष प्रधान समाज में नारियाँ अपना जीवन निर्वाह करने के लिए इस घृणित पेशा को अपनाती है। क्योंकि नारी को अपनी जीविका के लिए अन्य कोई सम्माननीय साधन नहीं मिलता और विवशतावश वह अपना शरीर बेचती है। नारी वेश्याएँ साधारण तथा मध्यम वर्ग की युवतियाँ ही होती हैं। कभी-कभी सम्भ्रान्त परिवारों की युवतियाँ भी इस पेशे में सम्मिलित होती है।[१] साधारण और मध्यम वर्ग की नारी कुछ ऐसी विकट समस्या में फँस जाती है कि उसे अपनी लज्जा, प्रेम, नैतिकता और आचार-विचार को भूलकर और प्रेम-भावना से रहित होकर वेश्या बनती है। समाज की कुरीतियाँ और धार्मिक शोषण के कारण नारी को दर-दर की ठोकरें खानी पडती है। पुरूष वर्ग के वैयक्तिक विघटन के कारण उसे तरह-तरह की यातनाएँ दी जाती हैं।[२] कुछ नारियाँ समाज के नराधमों के कुचक्र में फँस जाती है और इस घृणित व्यवसाय को अपनाने में बाध्य हो जाती हैं। तो कुछ नारियाँ अपनी स्वार्थपूर्ति, संतुष्टि तथा मनोरंजन के रूप में मनमर्जी से इस प्रकार की नारियाँ केवल सेक्स की संतुष्टि के लिए वेश्यावृत्ति को अपनाती है।[३] वेश्या-समस्या के मूल में आर्थिक विषमता ही प्रमुख है।

श्री विष्णु प्रभाकरजी ने अपने "श्वेत-कमल" नाटक में पूनम को वेश्या के रूप में चित्रित किया है। पूनम सुन्दर और आकर्षक नारी है। जो अपने पापी पेट का सवाल हल करने के लिए कॉल गर्ल बनती है। उसके लिए जीवन में पैसा ही सब कुछ है। इसलिए वह पैसों के लिए अपनी छाती और टांगे नंगी रखती है। होटल और कैमिलों में जाकर अपने जिस्म का सौदा करती है। शराब पीकर वह अपनी मस्ती में मस्त और नशे में चूर रहती है। अपने मर्जी से जिन्दगी जीने के लिए अपने शरीर को बेच कर आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ती करती है। पूनम की सहेली नीलिमा उससे प्रभावित होती है और चकित होकर उससे कहती है -

नीलिमा : तू छाती और टांगे नंगी करती है।

पूनम : कहा न यार। करनी जरूरी है। यह चोरी नहीं है, खुला व्यवसाय है। जो खुला है, वह बुरा नहीं होता। बुरा परदा है।

नाटककार ने इस नाटक में रंजना को प्रेतात्मा के रूप में चित्रित किया है। जो भारतीय आदर्श नारी का प्रतीक है। जब रंजना का प्रेमी रंजना को वेश्या बनाना चाहता है, तो रंजना के दिल पर गहरी चोट लग जाती है और वह आत्महत्या कर लेती है। यहाँ नाटककार ने उस पुरूष वृत्ति को दिखाया है, जो प्रेम का नाटक करके नारी को वेश्या बनाने को प्रवृत्त करता है। इस प्रकार नाटककार प्रभाकरजी ने नारी के इस गम्भीर समस्या की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

7· आर्थिक समस्या

पुरूष ने समाज में अपना स्थान बनाकर नारी को दासी बनाया है। स्त्री-पुरूष को समाज में एक-दूसरे पर समान अधिकार हैं। परन्तु पुरूष ने नारी के सभी अधिकार छिन लिये हैं। इसी कारण बाह्य जगत् से नारी का सम्बन्ध टूट गया है। उसी समय से नारी के सामने आर्थिक संकट खड़ा हो गया है। समाज ने बाह्य जगत से तो क्या पारिवारिक आर्थिक स्थिति में भी नारी के योगदान को मान्यता नहीं दी है। लेकिन नारी जाति में आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की चेतना उत्पन्न हुई। नाटककार विष्णु प्रभाकरजी के दृष्टि में आज की आधुनिक नारी की मर्यादा को बिगाड़ने का प्रधान कारण उसका आर्थिक दृष्टि से परावलम्बी होना है और यह चेतना ही नारी को आर्थिक दृष्टि से आज़ाद होने की प्रेरणा देती है। प्रभाकरजी ने अपने नाटकों में भी नारी को आर्थिक स्तर पर स्वावलम्बी होने की ही प्रेरणा दी है। कुछ मात्रा में आज नारी आर्थिक समस्या से मुक्त हो रही है। किन्तु नारी के आर्थिक स्वतंत्रता के कारण समाज में नयी पारिवारिक एवं सामाजिक समस्या को प्रबलता मिल गई है। आज के भारतीय समाज में स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों में एक विशेष परिवर्तन देखने को मिलता है। इसका प्रमुख कारण नारी का आर्थिक और कानूनी दृष्टि से स्वतंत्र होना है। आर्थिक दृष्टि से परावलम्बी स्त्रियों में यौन-समस्या भी दिखाई देती है। नारी चाहे जीवन के अन्य क्षेत्रों में कितनी ही स्वतंत्र क्यों न हो परन्तु आर्थिक स्वावलम्बन के अभाव में उसे हर हालत में पुरूष की अधीनता स्वीकार करनी पडती है।

आधुनिक युग में नारी अनेक समस्याओं से घिरी हुई हैं। नारी सदैव ही मानवीय भूमि पर न होकर केवल भोग्या समझी गई हैं। मानव जीवन स्त्री-पुरूष दोनों के सहयोग से बना है, लेकिन समाज का उनकी ओर देखने का दृष्टिकोन अलग है। पुरूष ने ही नारी को निर्बल बनाया है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य में वर्तमान नारी के जीवन का चित्र स्पष्ट किया है -

"अबला जीवन हाय। तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।"

भारतीय समाज में इस प्रकार नारी की दर्दभरी कहानी है। पुरूष ने अनेक सामाजिक कुप्रथाओं के दारा नारी को बाँधकर उसे दासी बनाया है। नारी का सम्पूर्ण जीवन ही पुरूष के इशारे पर चलता है और नारी जीवन भर समस्याओं से जूझती रहती है।

नि ष्क र्ष

1· विष्णु प्रभाकरजी ने अपने नाटकों में सामाजिक जीवन की समस्याओं के साथ ही नारी समस्याओं का भी सखोल चित्रण किया है।

2· नाटककार ने नारी की पारिवारिक समस्याओं को ही नहीं, बल्कि परिवार की परिधि से बाहर व्यापक नारी जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है।

3· आपने नारी-शिक्षा की समस्या पर प्रकाश डालते हुए शिक्षित और अशिक्षित नारियों (को) तुलना करके नये युग की फैशन परस्त नारियों की आलोचना की है।

4· विष्णु प्रभाकरजी ने नारी के वैवाहिक जीवन की अनेक समस्याओं का उल्लेख किया है जो आज भी समाज में व्याप्त है।

5· इसके साथ ही उन्होंने नारी-समस्या को दृष्टि में रखते हुए नारी-जीवन के विविध पहलुओं पर विचार व्यक्त किये हैं।

संदर्भ-सूची

1· हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1) पारिभाषिक शब्दावली, प्रधान सम्पादक- श्री धीरेन्द्रवर्मा, संस्करण 1963,

2· समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक - डॉ·शेखर शर्मा, पृ·21

3· संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर, संस्करण 1970, पृ·482

4· सामाजिक विघटन - डॉ·सत्येन्द्र त्रिपाठी, संस्करण 1973, पृ·206

5· दि डिवेल्पमेंट ऑफ सोशियल थॉट - बोगेरस, पृ·65

6· वही, पृ·210

7· टूटते परिवेश - विष्णु प्रभाकर, पृ·17

8· वही, पृ·17

9· विष्णु प्रभाकर के नाटक भाग-4, टूटते परिवेश, पृ·241

10· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक विचार-तत्व - डॉ·अवधेशकुमार गुप्त, पृ·241

11· ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद, पृ·42

12· विद्रोहिणी अम्बा - उदयशंकर भट्ट, पृ·26, 15-16

13· ये रेखाएँ ये दायरे - विष्णु प्रभाकर, पृ·26, 15-16

14· नये युग की नारी - दादा धर्माधिकारी, पृ·19

15· अब और नहीं - विष्णु प्रभाकर, पृ·84

16· वही, पृ·91

17· "हुंकार" - रामधारीसिंह दिनकर, पृ·22

18· कुहासा और किरण - विष्णु प्रभाकर, पृ·15

19· होरी - विष्णु प्रभाकर, पृ·82

20· वही, पृ·123

21· नये युग की नारी - दादा धर्माधिकारी, पृ·10

22· युगे-युगे क्रान्ति - विष्णु प्रभाकर, पृ·34-35

23· वही, पृ·68

24· समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक - डॉ·शेखर शर्मा, पृ·126

25· अपनी पराया - राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पृ·11

26· बन्दिनी - विष्णु प्रभाकर, पृ·78-79

27· कलाकार का सत्य - विष्णु प्रभाकर, पृ·95

28· कुहासा और किरण - विष्णु प्रभाकर, पृ·66

29· डॉक्टर - विष्णु प्रभाकर, पृ·114

30· वही, पृ·51

31· टगर - विष्णु प्रभाकर, पृ·85

32· अब और नहीं - विष्णु प्रभाकर, पृ·60

33· वही, पृ·93

34· युगे-युगे क्रान्ति - विष्णु प्रभाकर, पृ·22

35· वही, पृ·28

36· वही, पृ·52

37· वही, पृ·68

38· वही, पृ·36

39· अब और नहीं - विष्णु प्रभाकर, पृ·60

40· वही, पृ·60-61

41· वही, पृ·78

42· कलाकार का सत्य - विष्णु प्रभाकर, पृ·105

43· डॉक्टर - विष्णु प्रभाकर, पृ·130

44· यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त, पृ·47